# प्रकाशक का वक्तव्य

काव्य-ग्रंथ-रत्नमाला का चौदहवाँ रत्न श्री अखौरी गंगा-प्रसाद सिंह लिखित 'पद्माकर की काव्य-साधना' को लेकर साहित्य-प्रेमियों की सेवा में उपस्थित होते हुए हमें परम आनंद हो रहा है। अंगरेजी भाषा में इस प्रकार के अनेक आलोचनात्मक ग्रंथ मिलेंगे। किंतु हिंदी भाषा के आलोचना-जगत में अपनी शैली का यह प्रथम ग्रंथ है।

यह ग्रंथ पद्माकर के संपूर्ण काव्य-साहित्य का निचोड़ कहा जा सकता है। इसमें व्रजभाषा के अंतिम प्रतिनिधि कवि पद्माकर के संपूर्ण साहित्य की मीमांसा बहुत ही मार्मिक और प्रभावोत्पादक शैली में—संस्कृत, हिंदी, उर्दू और अंगरेजी के प्रसिद्ध कवियों के सम-काव्यांशों से तुलना करते हुए—लिखी गई है। जहाँ तक हमारा अनुमान है, अंगरेजी साहित्य से इतनी अधिक तुलना हिंदी के किसी कवि के काव्य की किसी भी आलोचना-ग्रंथ में नहीं की गई है। यह इस ग्रंथ की एक प्रधान विशेषता है। यद्यपि यह ग्रंथ सभी साहित्य-प्रेमियों के पढ़ने योग्य है, किंतु विद्या-र्थियों और अध्यापकों के लिए यह विशेष उपयोगी है। हमारे पाठकों ने जिस उत्साह और प्रेम के साथ 'आँख और

कविगण' को अपनाया है, आशा है, वे इसे भी उसी प्रकार अपनाकर हमें प्रोत्साहित करेंगे।

पाठकों को यह भी बताते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है, कि हमारी प्रायः सभी पुस्तकों को यू० पी०, बंगाल, पंजाब, बी० एच० यू, और सी० पी० ई० के शिक्षाविभागों ने अपने यहाँ की स्कूल तथा कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकार कर लिया है और कुछ पुस्तकों को भारत के प्रायः सभी विश्व-विद्यालयों ने उच्च कक्षाओं में पाठ्यक्रम में भी सम्मिलित कर लिया है, जिससे उनके प्रचार में हमें काफ़ी सहायता मिली है। इसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं और आशा करते हैं, कि भविष्य में भी वे हमारे प्रति ऐसी ही कृपा बनाए रखेंगे। जो पुस्तकें अभी तक स्वीकृत नहीं की गई हैं, हमें पूरा विश्वास है कि निकट भविष्य में वे भी स्वीकृत करली जायँगी।

अंत में आपसे हमारी सानुरोध प्रार्थना है, कि आप अब तक हमारे प्रति जैसा प्रेम रखते आए हैं, वैसा ही रखने की कृपा करेंगे।

ग्वालदास साहू<br>मा० मे० सदन कार्यालय<br>काशी।

भवदीय—<br>**गोपालदास पोद्दार**<br>अध्यक्ष।

# अनुवचन

हिंदी में आलोचनात्मक साहित्य का आरंभ हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए, और इस ओर अभी बहुत कार्य करना बाकी है। एक प्रकार से कह सकते हैं कि मिश्र-त्रय के हिंदी नवरत्न से आलोचना-ग्रंथों का आरंभ होता है। इसके अनंतर कुछ समय तक तुलनात्मक आलोचना की धूम रही, जिसमें एक के उत्तम पद उद्धृत कर दूसरे के निकृष्ट पद से तुलना कर उसे नीचे गिराने की असफल चेष्टा ही का प्राधान्य रहता था। इसके बाद सूर, तुलसी आदि पर कुछ मार्मिक आलोचनाएँ निकलीं, जिनमें सम्यक् रूप और छोटे-बड़े तू-तू मैं-मैं की गर्द के अभाव से स्वच्छतापूर्ण विवेचना की गई है। परंतु आलोचना की यह परंपरा बहुत धीरे-धीरे चल रही है और ऐसा होना भी चाहिए क्योंकि यह विषय गंभीर है तथा इसके लिए विशेष अध्यवसाय की आवश्यकता रहती है।

पद्माकर भट्ट रीति-काल के श्रेष्ठ कवियों में परिगणित हैं। इन्होंने अपने कई आश्रयदाताओं के लिए कई ग्रंथ निर्मित किए हैं। भाषा पर इनका अच्छा अधिकार रहा है और यह शृंगार-रस प्रधान कवि हैं। मुक्तक छंद लिखने में यह बहुत सफल हुए हैं। इस पुस्तक में ऐसे ही सुकवि की विस्तृत जीवनी दी गई है तथा गुण-दोष-विवेचन विशिष्ट रूप से किया गया है। अंग्रेजी, संस्कृत,

उर्दू तथा हिंदी के अन्य कवियों के उद्धरण बीच-बीच में देकर तुलनात्मक विचार करते हुए समालोचक महाशय ने पुस्तक को विशेष रोचक बना दिया है। इन्होंने इसमें अपनी काव्य-मर्मज्ञता, अध्यवसाय तथा सहृदयता सभी का परिचय दिया है। इस ग्रंथ के मनन से महाकवि पद्माकर की खूबियों से पाठक-गण सुगमता के साथ परिचित हो सकेंगे।

काशी
४-८-२४।

**ब्रजरत्नदास।**
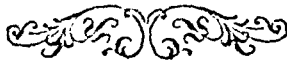
# निवेदन

सन् १९३१ ई० में जगद्विनोद की भूमिका के रूप में यह 'पद्माकर की काव्य-साधना' लिखी गई थी, किंतु अनेक अन्य कार्यों में फँसे रहने के कारण इसे समाप्त नहीं कर सका था। बीच-बीच में संशोधन और परिवर्द्धन बराबर होता रहा। धीरे-धीरे इसका आकार बहुत बढ़ गया। यह देख इसे भूमिका नहीं बल्कि पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का विचार स्थिर हुआ।

सन् १९३२ में मित्रवर पं० शिवकुमार शुक्ल तत्कालीन आर्य्य-महिला-संपादक ने इसे देखकर अपनी पत्रिका में प्रकाशित करने की उत्कट अभिलाषा प्रकट की। आर्य्य-महिलाओं के लिये इस निबंध को अधिक उपयोगी न देख पहले तो प्रकाशनार्थ देने में कुछ झिझक हुई, किंतु मित्र के अनुरोध को टाल न सका। अस्तु, समय-समय पर इसके कुछ चुने हुए स्थल उसमें प्रकाशित हुए हैं। गत श्रावण मास की नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका में भी इसका एक विशेष अंश प्रकाशित हुआ है।

पिछले मास में मेरे सहपाठी बा० गोपालदासजी पोद्दावाल के अनुरोध से इसका प्रकाशन प्रारंभ हुआ। उनकी बड़ी इच्छा थी कि गुरु-पूर्णिमा के पूर्व ही यह पुस्तक छपकर तैयार हो जाय। इसी शीघ्रता में प्रूफ-संशोधक से कुछ अशुद्धियाँ भी पुस्तक में रह गई हैं जो दूसरे संस्करण में शुद्ध कर दी जायँगी, किंतु इसमें एक

भयंकर अशुद्धि रह गई है। पृष्ठ ७७ में आठवीं पंक्ति नीचे के दिए हुए कवित्त की चौथी पंक्ति—"सौहैं पेख पीकी बिहसौंहै भए दोऊ दृग सौहैं सुनि भौहैं गईं उतरि कमानै सी"—छपने से ही रह गई है जिसका मुझे अत्यंत खेद है।

पुस्तक छपने के सिलसिले में ही जुलाई मास के विशाल-भारत में मुझे कुँअर महेंद्रपालसिंह का 'पद्माकर की पाँच पीढ़ी' शीर्षक निबंध पढ़ने को मिला। उसमें पद्माकर के संबंध में कुछ नई घटनाओं का उल्लेख है। जिन्हें पाठकों की जानकारी के लिए यहाँ पर दे देना अनुचित न होगा।

"कहा जाता है, कि पद्माकर जी घोड़े पर सवार होकर अपने नौकरों के साथ जयपुर पहुँचे और श्री गिरधारीजी के मंदिर में ठहरे। कई दिन तक कोशिश की कि महाराजा साहब के दरबार में पहुँच हो; किंतु अन्य कविगण यह मौका न देते थे। महाराजकुमार जगतसिंह जी उन दिनों हिंदी-कविता पढ़ने के लिए हवा-महल में जाते थे। एक दिन उनके गुरुजी एक समस्या की पूर्ति में अटके हुए थे। महाराजकुमार बार-बार पूछते थे कि गुरुजी छंद पूरा हुआ या नहीं। पद्माकर जी नीचे बाज़ार में खड़े हुए यह सुन रहे थे। उन्होंने तुरंत साईस का रूप बनाया और महाराजकुमार के कमिनों से कहा कि मैंने समस्या की पूर्ति की है, सो सुन लीजिए। नौकरों ने उनका रूप देखकर पहले तो झिड़का; किंतु महाराजकुमार के आग्रह पर उन साईस-रूपी पद्माकर को ऊपर आने की आज्ञा हुई। समस्या यह थी—

काली जू के कज्जल की ललित लुनाई सोतो,
सारे नभमंडल में भार्गव चंद्रमा ;

पद्माकर ने इसकी पूर्ति इस प्रकार सुनाई—

"संभु के अधर माँहि काहे की सुरेख राजै,
गाई जात रागिनी सुकौन सुर मंद्रमा ;
देत छबि को है कोकनद में नदी में कहो,
नखत विराजै कौन निसि में अतंद्रमा।
एक दृग को है कौन वर्णन असंभवित,
घटै-बढ़ै सो तो दिन पाय-पाय पंद्रमा ;
काली जू के कज्जल की ललित लुनाई सो तो,
सारे नभ मंडल में भारगव चंद्रमा।"

"महाराजकुमार तथा उनके गुरुराज दोनों दंग रह गए, और परिचय पूछा। उत्तर मिला—"हम बुंदेलखंडवासी हैं। पद्माकर कवि के साईस हैं।" पता नोट कर लिया गया कि वे कहाँ ठहरे हैं, और महाराजकुमार ने अपने पिताजी से पद्माकर को दरबार में बुलाने के लिए कहा। उचित समय पर पद्माकर जी दरबार में बुलाए गए, उन्होंने आशीर्वाद देते समय यह कवित्त पढ़ा—

"कामद कलानिधान कोविद कविनंदन को,
काटत कलेस कलि कलपतरु कैसे हैं ;
कहै 'पदमाकर' भगीरथ से भागवान,

मानिनी मनोहरन महत मजेजवंत,
माधव नरिंद तनै तेजवंत तैसे हैं;
कूरम कुलीन मान सिंहावत महाराज,
साहिब सवाई श्री प्रतापसिंह ऐसे हैं।"

महाराजा साहब ने शीश बढ़ाकर प्रणाम किया, और सिरोपाव-सहित गाँव दिए। पद्माकर जी कहने लगे—

"देत बढ़ा सीस तुम, देत हैं असीस हम,
तुम जसु लेत, हम बसु लेत आए हैं;
'पदमाकर' कहै तुम सुबरन बरषत,
हमहूँ सुहाए सुबरन बरसाए हैं।
राजन के राजा महाराजा श्री प्रतापसिंह,
तुम सकबंध, हम छंद बंध छाए हैं;
जानियो न ऐसी किए बिगर बुलाए आए,
गुन तो तिहारे मोहि बरबस लाए हैं।"

बस, पद्माकर जी जयपुर में रहने लगे। जो मंदिर 'तारकसियोंवाला' कहलाता है, उसी में राज्य की तरफ से उनके रहने का इंतजाम हुआ। कितनी जागीर मिली, इसका अभी तक कोई पता नहीं लगा है। कहा जाता है कि आठ गाँव मिले थे; किंतु इस समय तो केवल एक छोटा भाऊवास इनके वंशजों के पास है। फिर यह भी कहा जाता है कि यह गाँव संवत् १८९६ में पद्माकर के पुत्र मिहीलाल जी को दिया गया था। यह निश्चय है कि पद्माकर जी को खूब माल-असबाब मिला होगा, क्योंकि वे बड़े ठाट से रहते थे, जैसा कि उनके दो-एक कवित्तों से पाया जाता है—

"सूरत के साह कहै कोऊ नर नाह कहै,
कोऊ कहै मालिक ये मुलक दराज के ;
राउ कहै कोऊ उमराव पुनि कोऊ कहै,
कोऊ कहै साहिब ये सुखद समाज के।
देखि असबाब मेरो भरमैं नरिंद सबै,
तिन सों कहे मैं बैन सत्य सिरताज के ;
नाम 'पदमाकर' डराउ मति कोऊ भैया,
हम कविराज हैं प्रताप महाराज के।

झूमत मतंग माते तरल तुरंग ताते,
राते-राते जरद जरूर माँगि लायबो ;
कहै 'पदमाकर' सो हीरा लाल मोतिन के,
पन्नग के भाँति-भाँति गहने जड़ायबो।
भूपति प्रतापसिंह रावरे बिलोकि कवि,
देवता विचारैं भूमिलोकै कब जायबो ;
इंद्र पद छोड़ि इंद्र चाहै कविंद्र पद,
चाहैं इंद्रानी कविरानी कहवायबो।

......उन्होंने प्रतापसिंह जी और जगतसिंहजी के ऊपर कुछ फुटकर कवित्त कहे थे। वे फटे कागज पर लिखे और एक पुराने बस्ते में बँधे गोविंदरावजी के पास मौजूद है।.........ये फुटकर कवित्त तथा 'यमुना-लहरी' के आठ कवित्त मिले, जो अवश्य ही नई चीज़ है। इन कवित्तों में प्रतापसिंह जी के स्वभाव का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

"कीरति कतार करतार कामधेनुन की,
सूरत विचार घनसार को घरसिबो ;
कहै 'पदमाकर, प्रतापसिंह महाराज,
बोलिबो तिहारो सुधासिंधु को बरसिबो ।
सहज सुभाइ मुसकाइबो मनोहर है,
जगत प्रसिद्ध आठो सिद्धि को सरसिबो ;
दिल सों दया सो देखिबोई देवदर्सन,
रीझिबो रसायन है पारस परसिबो ।

जयपुर में 'गनगौर' का उत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। पद्माकरजी के शब्दों में उस दिन का भी वर्णन सुन लीजिए।

"गौर गनगौरि के सुगिरिजा गोसाइन को,
आनन गहाँ ही आइ आनँद छते रहे ;
कहै 'पदमाकर' प्रतापसिंह महाराज देखो,
[illegible] को [illegible] देवता तिते रहे ।
[illegible]
[illegible] उमा को यों उमापति जिते रहे ;
[illegible] गनगौरि अहै,
[illegible] चिते रहे ।"

"गाँउ गज बाजिदै दराज कविराजन,
पटैल को परामव दै फतूहन फलै गए ;
कहै 'पदमाकर' अभय दै राज रैय्यत को,
मंत्रिन कों मंत्र दै न काहू सों छलै गए।
साहिब सवाई सुख-संपति समाज-साज,
जगत नरिंदे निज नंदे दै भलै गए ;
बास बैकुंठ करिबे कों श्री प्रताप,
पाक सासन के आसन पै पाँउदै चलै गए।"

× × ×

"………महाराज जगतसिंहजी को बहुत सी कुटेवें पड़ गई थीं। रसकपूर नामक वेश्या का महाराज पर बहुत प्रभाव हो गया। तीतर-लवों की लड़ाई देखने में उन्हें आनंद आने लगा। बेचारे पद्माकर को भी 'लवा' और 'तीतर' की तारीफ करनी पड़ी—

"निपट निखोट करैं चोट पर चोट लोटि,
जानत न जुद्ध जुरैं उद्धत अवाई के ;
कहै 'पदमाकर' त्यों बलकैं बिलंद बली,
ललकैं लवीन पर लक्का ज्यों लुनाई के।
चंचल चुटीले चिक्क चाक चटकीले,
सक्ति संगरत जैन लोय लँगर लराई के ;
ब्रज्र के बबा हैं कै छवा हैं छबिहीके,
रन रोस के रवा हैं कै लवा हैं श्री सवाई के।

मक्के पीजरान ही तें खोलत खुले परत,
बोलत सो बोल बिजै दुंदुभी से दै रहे ;

# विषय-सूची

## १

## पद्माकर के पूर्व



## २

## कवि का परिचय



## ३

## ग्रंथ-परिचय

# पद्माकर की काव्य-साधना

# १

# पद्माकर के पूर्व

साहित्य की उन्नति और अवनति देश की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति पर निर्भर है। साहित्य समाज का दर्पण है। समाज की जैसी स्थिति होती है, साहित्य में उसी का प्रतिबिम्ब प्रतिफलित होता है। हिंदी-साहित्य के इतिहास का परिशीलन करने से यह तथ्य बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है।

हिंदी-भाषा का विकास कब और कैसे हुआ; यद्यपि इस समय इसका ठीक-ठीक उत्तर देना असंभव है, तथापि जो उसकी प्राचीनतम रचनाएँ मिलती हैं, वे हैं बौद्धों के वज्रयान

संप्रदाय के सिद्धों की धार्मिक रचनाएँ, जिनका निर्माण उन्होंने अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिए किया था। सिद्धों की भाषा प्रायः प्राचीन मागधी हिंदी रही है।

सिद्धों की रचनाओं के पश्चात् प्राचीन शौरसेनी राजस्थानी हिंदी में हिंदू राजाश्रयस्थ कुछ बंदीजनों की रचनाएँ मिलती हैं। पृथिवीराज-रासो इसी समय की एक उत्कृष्ट रचना है। जिस समय इस महाकाव्य की रचना हो रही थी भारतवर्ष का वायुमंडल बहुत ही अशांत और युद्ध-विग्रह से पूर्ण था। मुसलमानों के आक्रमणों से उत्तरी भारत संत्रस्त हो गया था। उस समय के अनुकूल ही तत्कालीन साहित्य में एक अद्भुत रूक्षता और विशृङ्खला पाई जाती है। उसमें विकसित शैली का अभाव है तथा श्रेष्ठ भावों की कमी। किसी वीर के कुछ स्थूल गुणों का ओजस्विनी भाषा में वर्णन कर जनता को आवेशित करना ही उस समय की काव्य-साधना का प्रधान लक्ष्य देखा जाता है। किंतु, इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है, कि उस काल में अन्य प्रकार की कविताएँ न होती थीं अथवा वे किसी प्रकार उपेक्षणीय हैं। उस समय भी विविध विषयों पर रचनाएँ हुई हैं तथा काल एवं स्थिति के विचार से वे हमारे आदर और श्रद्धा के योग्य हैं। वह हिंदू-मुसलमानों के संघर्ष तथा अशांति का युग था और भाषा की भी अपुष्ट शैशवावस्था थी। अस्तु, उस समय में हमें उसी के अनुरूप भाषा, भाव तथा शैली के स्वरूपों का दर्शन मिलता है। हिंदी का यह

आदिकाल अथवा सिद्ध तथा वीर-गाथा-काल सम्वत् ७५० से सम्वत् १३७५ विक्रमीय तक कहा जाता है।

भक्ति और ज्ञान-काल

मुसलमानी राज्य के प्रतिष्ठित होने पर हिंदु-नरेशों का संपूर्ण गौरव चूर्ण-विचूर्ण हो गया। हिंदुओं का संपूर्ण मान-अभिमान मिट्टी में मिल गया। उनके धार्मिक और सामाजिक भावों की पूरी अवहेलना की गई, उनके देव-मंदिर तोड़े गए, गाए काटी गईं, बहू-बेटियों पर बलात्कार हुए तथा इसी प्रकार के विविध अत्याचार किए गए, जिसका साक्षी तत्कालीन इतिहास है। ऐसे कष्ट के दिनों में न तो उन्हें अपने गौरव का ध्यान रह सकता था और न अपनी शक्ति में विश्वास। देखा जाता है, कि जब मनुष्य कष्टों का सामना करते-करते हताश हो जाता है, तो उसका ध्यान सर्व कष्टापहारी भगवान की ओर जाता है। यही अवस्था हमारे पूर्व मध्यकालीन कवियों की हुई। सांसारिक कष्टों से थककर मानव-कीर्तन त्याग उन्होंने भगवत्-कीर्तन से ही अपनी वाणी को पवित्र किया। उन्होंने भक्ति तथा ज्ञान की ऐसी निर्मल धारा प्रवाहित की, जिसमें न केवल हिंदू-जनता निमग्न हुई वरन् मुसलमान-जनता भी अवगाहन कर धन्य हो गई।

हिंदी का यह भक्ति और ज्ञान-काल, मुगलसम्राटों से संधि कर हिंदू-नरेशों का युद्धादि से विरत होने के कारण पूर्वापेक्षा शुद्ध, शांत एवं प्रकृतिस्थ हो गया था। सम्राट अकबर के

राज्यारोहण-काल अर्थात् सोलहवीं शताब्दि के अंत और सतरहवीं शताब्दि के प्रारंभ तक तो उसमें एक प्रकार से पूर्ण शांति आगई थी। जनता का धार्मिक और सामाजिक कठिनाइयाँ धीरे-धीरे दूर हो गईं, उनकी वैयक्तिक स्वतंत्रता पर निष्प्रयोजन आक्रमण न होता था। व्यापार-व्यवसाय पूर्वरूप में चलने लग गए थे और लोगों के जान-माल की रक्षा का प्रबंध था। ऐसे ही शांतिमय वातावरण में साहित्य पल्लवित और पुष्पित होता है। इस दृष्टि से हिंदी-साहित्य की उन्नति के लिए यह काल बहुत उपयुक्त था। हुआ भी वैसा ही। अकबर के राजत्व काल तक हिंदी-कविता में यथेष्ट प्रौढ़ता आ गई थी। समय की गति के अनुसार इस समय तक हिंदी-भाषा का स्वरूप धीरे-धीरे परिष्कृत हो गया। अपभ्रंश शौरसेनी की उत्तराधिकारिणी व्रज की भाषा हिंदी की काव्य-भाषा मानी गई। तत्कालीन एवं एक निश्चित समय तक उत्तर-कालीन कवियों ने उसी के द्वारा अपनी वाणी को पवित्र किया है। परंतु, शुद्ध व्रजभाषा का प्रयोग बहुत कम देखा जाता है। भाषा को मधुर, प्रसाद, एवं, ओज-गुण संपन्न बनाने के लिए विभिन्न प्रान्तीय कवियों ने उसमें अपने तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं के उपयुक्त शब्दों को भी सम्मिलित किया है; जिसमें बुन्देलखंडी और अवधी शब्दों का एक विशेष स्थान है। उस काल में कबीरदास आदि संत कवियों तथा जायसी, कुतबन आदि सूफी कवियों की अपेक्षा सूर, तुलसी, नंददास आदि वैष्णव भक्त-कवियों ने

अधिक प्रांजल भाषा तथा शैली का प्रयोग किया है। छंदों, वृत्तियों और अलंकारों के शुद्ध और उपयुक्त प्रयोगों में तथा श्रेष्ठ भावों के विकास में वे अधिक सफल हुए हैं। काव्य-रचना के लिए जैसे ज्ञान तथा जिस प्रकार की अनुभूति आज दिन अपेक्षित है। उसे उस काल में ढूँढ़ना ठीक न होगा। परंतु भाव तथा भाषा दोनों ही दृष्टियों से वह हिंदी-काव्य का परमोत्कृष्ट काल कहा जा सकता है। शुद्ध एवं प्रांजल भाषा में उन्नत भावों का सर्व प्रथम दर्शन महात्मा सूरदास की वाणी में होता है। उनकी भाषा में अवधी, पंजाबी, बिहारी आदि भाषाओं का प्रभाव यद्यपि स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। तथापि भाषा को जो स्वरूप उन्होंने प्रदान किया तत्कालीन साहित्य की वही आदर्श व्रजभाषा समझी गई। उनके भाव भी बहुत ही परिष्कृत, श्रेष्ठ तथा मधुर हुए हैं और व्यक्त करने की शैली भी यथेष्ट उन्नत है। हिंदी में उतना सुंदर गीत-काव्य लिखने में आज तक किसी को सफलता प्राप्त न हुई। अवधी मिश्रित व्रजभाषा का आदर्श प्रयोग गोस्वामी तुलसीदासजी की भाषा में मिलता है। शैली की उत्कृष्टता, प्रबंध अथवा कथानक-काव्यों में ही देखी जाती है। भक्ति-काल को एक दृष्टि से हम कथानक-काव्य का युग भी कह सकते हैं। इसी काल में कुतबन, मंझन, जायसी उसमान आदि प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों ने तथा तुलसी, केशव आदि अनेक अन्य कवियों ने कथानक-काव्य की रचनाएँ कीं। इन सभी कवियों के काव्यों में काव्य एवं कला की दृष्टि

से तुलसीकृत रामचरितमानस ही सर्वोत्कृष्ट हुआ है। भाषा तथा शैली आदि किसी भी विचार से हिंदी के किसी भी काव्य-ग्रंथ को उसकी समकक्षता अब तक न प्राप्त हुई। उसमें वाह्य एवं आंतर दोनों ही प्रकार के सौंदर्यों का बड़े ही उच्च श्रेणी का दर्शन मिलता है। आंतर सौंदर्य प्रदर्शनात्मक काव्यों में उनकी विनयपत्रिका का बड़ा ही उच्च स्थान है भाषा, भाव तथा शैली की उत्कृष्टता के विचार से भक्ति-काल का, जो लगभग सम्वत् १३७५ से १७८० तक माना जाता है, हिंदी साहित्य के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है।

**रीति काल और उसकी विशेषता**

मुसलमान सम्राटों की राज्य-दृढ़ता और हिंदू-नरेशों के अकर्मण्य जीवन के साथ-साथ देश का वातावरण विलास-भाव से परिपूर्ण हो गया। इस काल में राजा, उनके पार्श्ववर्ती और प्रजा सभी में विलास-भाव का प्राधान्य पाया जाता है। ऐसी स्थिति में किसी विशेष लोकोपकारी महान कार्य की आशा कम रहती है। परंतु साहित्य का कार्य ऐसा है, जो किसी भी अवस्था में कुछ-न-कुछ पल्लवित और पुष्पित होता ही रहता है। यद्यपि इस काल के कवियों का प्रधान लक्ष्य अपने आश्रयदाताओं का मनोरंजन ही रहा है और इसी से उन्हें दरबारी और उनके साहित्य को दरबारी साहित्य कहा जाता है; परन्तु उनके द्वारा भी दो कार्य विशेष रूप से उल्लेख योग्य हुए हैं। एक शास्त्रीय ग्रंथों का निर्माण दूसरे भाषा का परिमार्जन।

यद्यपि प्रथम कार्य में उनको वह सफलता नहीं मिली, जिसकी उनसे आशा करना सर्वथा न्याय संगत है, पर दूसरे कार्य में वे पूर्ण सफल रहे और इसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

भाषा, भाव तथा शैली की उत्कृष्टता के विचार से भक्तिकाल का हिंदी-साहित्य के इतिहास में एक विशेष महत्त्व है, किंतु रीति-कालीन कवियों की भाषा एवं शैली भी भक्ति-कालीन कवियों की भाषा तथा शैली की अपेक्षा किसी प्रकार कम महत्व नहीं रखती। भाषा तथा शैली के सौंदर्य की रक्षा में किसी-किसी अंश में तो इस काल के कवियों ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से भी अधिक सफलता पाई है। कोमल-कांत-पदावली की जैसी छटा रीति-काल में पाई जाती है, वैसी सिद्धयुग और वीर-गाथा-काल में तो ढूँढ़ने पर न मिलेगी और भक्ति-काल में भी कुछ इने-गिने कवियों की रचनाओं में ही पाई जा सकती है। ज्ञानाश्रयी संत कवियों की भाषा सर्वथा अविकसित है। प्रेम-मार्गी सूफ़ी कवियों ने अवध की ग्राम्य भाषा का प्रयोग किया है और उसे यथेष्ट मार्जित रूप प्रदान किया है। नंददास, हितहरिवंश आदि ने भाषा को संस्कृत शब्दों से अलंकृत कर अधिक सुंदर बनाने की चेष्टा की है। किंतु भाषा का सर्वांग सुंदर रूप गोस्वामी तुलसीदासजी की वाणी में ही देखने को मिलता है। उन्होंने ब्रज तथा अवधी के प्रचलित और अप्रचलित नागरिक तथा ग्राम्य शब्दों का सब रसों के अनुकूल जिस दक्षतापूर्वक व्यवहार किया है। उसकी समता मिलना

कठिन है। उन्होंने अपनी भाषा को भाव की अनुरूपिणी बनाया है। जहाँ पर शांत परिस्थिति का वर्णन है, वहाँ पर उनकी भाषा भी सौम्य हुई है और जहाँ पर युद्धादि का वर्णन है वहाँ उनकी भाषा में भी कड़कती हुई वाहिनी की सहज कठोरता है। उदाहरणार्थः—

बंदौ—गुरुपद—पदुम—परागा।
सुरुचि-सुबास-सरस-अनुरागा॥
अमिय मूरि मय चूरन चारू।
समन सकल भवरुज-परिवारू॥
सुकृत-संभु-तन-बिमल-बिभूती।
मंजुल मंगल मोद—प्रसूती॥
जन-मन-मंजु मुकुर-मल-हरनी।
किये तिलक गुन गन बस करनी॥

× × × ×

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर,
धाये जातुधानन हनुमान लियो घेरि कै।
महाबल पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट,
जहाँ तहाँ पटकि लँगूर फेरि फेरि कै॥
मारे लात, तोरे गात, भागे जात, हाहाखात,
कहैं तुलसीस राखि राम की सौं टेरि कै।
ठहर-ठहर परे कहरि कहरि उठैं,
हहरि हहरि हर सिद्ध हँसैं हेरि कै॥

इन दोनों ही उदाहरणों से उनकी बहु-भाषा की प्रयोगिनी शक्ति का पर्याप्त परिचय मिलता है।

भक्ति-कालीन कवियों की भाषा में जो गुण था उसे तो रीति-कालीन कवियों ने उत्तराधिकारी के रूप में अपनाया ही, पर अपनी ओर से उन्होंने भाषा को कोमल और सुकुमार रूप देने की विशेष चेष्टा की है। इस काल में कर्कश शब्दों का सप्रयत्न बहिष्कार तथा प्रचलित अप्रचलित कोमल से कोमलतर शब्दों को अंगीकार कर भाषा को बहुत ही सुकुमार स्वरूप प्रदान किया गया। रीति-काल की भाषा अपनी कोमलता के लिए ही प्रसिद्ध है। कोमलता, यद्यपि भाषा का एकांगी गुण है तथापि उसके महत्व को हम अस्वीकार नहीं कर सकते। रीति कालीन कवियों को हम सौंदर्य-प्रेमी कवियों के अंतर्गत रख सकते हैं। उन्होंने अपने काव्य में सृष्टिसौंदर्य तथा मानव-हृदय पर उसके पड़नेवाले प्रभाव को एक ही स्थल पर बड़े प्रभावोत्पादक रूप से व्यक्त किया है। वसंत-श्री के वर्णन में उन्होंने वसंत के शुद्ध सौंदर्य-वैभव अथवा उसके सौंदर्य का विश्लेषण कर उसके सूक्ष्म स्वरूपों को ही प्रदर्शित नहीं किया है वरन् साथ ही उसके विकास से विविध अवस्था-भुक्त-मानव मानस के भाव-परिवर्त्तनों को भी चित्रित करने की चेष्टा की है। षडऋतुओं के वर्णन आदि इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। कला की दृष्टि से रीति-काल के कवियों को बड़ी अच्छी सफलता मिली है। उनकी सुंदर प्रवाहमयी भाषा, उनकी अनोखी

एवं प्रभावोत्पादिनी वर्णन-शैली तथा उनके आलंकारिक प्रयोगों को देखकर चित्त चमत्कृत हो जाता है। परंतु भाव की दृष्टि से वे बहुत अधिक सफल नहीं माने जा सकते। भक्तिकालीन कवियों का महत्व उनकी भावोच्चता की दृष्टि से है और रीतिकालीन कवियों का महत्व उनकी कला-श्रेष्ठता के विचार से। उनकी कविता में कला प्रधान है और भाव गौण। किंतु इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि उनके भाव भक्तिकालीन कवियों की अपेक्षा सर्वथा हेय हैं। भक्तिकालीन कवियों ने यदि ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति की धारा प्रवाहित की है तो रीतिकालीन कवियों ने गार्हस्थ्य प्रेम के चित्रों को अंकित करने की चेष्टा की है। यद्यपि गार्हस्थ्य प्रेम के जिस स्वरूप को उन्होंने अंकित किया है, उसे न तो पूर्ण ही कहा जा सकता है और न बहुत श्रेष्ठ, फिर भी उन्होंने स्त्री-पुरुष के प्रेम के जितने भी अंश को दिखाया है, वह उनकी मधुर कल्पना का ही परिचायक है। यह भी सत्य है कि, उनकी कल्पना कहीं-कहीं अप्राकृतिक तथा अश्लील हो गई है, किंतु तत्कालीन स्थिति तथा काव्य-परिपाटी को देखते हुए हमें उन्हें क्षमा करना होगा। उनकी काव्य-प्रतिभा रीति-ग्रस्त है। नियमित भाषा, भाव एवं शैली के भीतर वह जकड़ी हुई है। उन्होंने प्रायः दो सौ वर्षों तक एक ही रस, रीति और भाव के चित्र अंकित किये हैं। जिन प्राकृतिक उपादानों का आश्रय लेकर उन्होंने अपनी कला की कूँची चलाई है, वे भी सर्वथा बँधे-चुने हैं। रंग भी

प्राय: एक ही प्रकार के हैं, एवं भावाभिव्यंजन में भी कोई विशेष अंतर नहीं। उनकी काव्य-प्रतिभा को कभी भी उन्मुक्त वायु मंडल में स्वतंत्र भाव से विचरण करने का अवसर नहीं मिला। अधिकांश के काव्य-चित्र जो एक दूसरे से मिलते-जुलते पाये जाते हैं, उसका यही प्रधान कारण है। विषय की समता से विचारों में समता का आ जाना अस्वाभाविक नहीं है। इस दृष्टि से उन्होंने जो कुछ लिखा है, वही बहुत है। हमारे यहाँ रीतिकालीन कवियों का एक विशेष स्थान है और उनके महत्व को किसी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह सत्य है कि इस समय ऐसा कोई शक्ति संपन्न कवि नहीं उत्पन्न हुआ जो भक्त प्रवर सूर अथवा तुलसी के समकक्ष बैठाया जा सके अथवा जिसे विश्वकवि कहकर संबोधित किया जा सके, फिर भी ऐसे अनेक कवि उत्पन्न हो गये हैं जिनकी रचनाएँ संसार की किसी भी भाषा में सम्मान की दृष्टि से देखी जा सकती हैं तथा जिनकी कविता की तुलना संसार के किसी भी श्रेष्ठ कवि की रचना से की जा सकती है। पद्माकर इसी समय के अंतिम प्रतिनिधि कवि हो गए हैं।

---

# १

# कवि का परिचय

**जीवन-वृत्त की सामग्री**

हमारे यहाँ पूर्वकाल में साहित्यिकों का जीवन वृत्तान्त नहीं लिखा जाता था। कवियों के काव्य ही उनकी स्मृति रक्षा के लिए तथा उनके जीवन के घात-प्रतिघात का परिचय देने के लिए यथेष्ट समझे जाते थे। उनके सांसारिक कार्य-कलापों के संबंध में अनुसंधान करने की प्रवृत्ति हमें पश्चिम से मिली है। अस्तु, यह सर्वथा नई प्रवृत्ति है। इसी से किसी भी प्राचीन कवि की जीवन-घटनाओं का तथा उसके हृदय के हर्ष-विषाद

का कोई सम्यक परिचय नहीं मिलता। कवियों ने अपने आश्रय-दाताओं तथा अपने कुल-गोत्र के संबंध में जो परिचय दिया है अथवा उनके संबंध में जो किंवदंतियाँ प्रचलित हो गई हैं, उन्हीं के आधार पर उनका जीवन वृतांत लिखकर हमें संतोष करना पड़ता है। यद्यपि इससे कवियों के संबंध में अनेक मिथ्या तथा भ्रामक तथ्यों का प्रचार होता है, पर लाचारी है। अपने ज्ञान के अनुसार अनुसंधानकर्त्ता तथ्यांश को ही प्रकट करने की चेष्टा करते हैं। पद्माकर का प्रचलित जीवन-वृत्तांत भी भ्रामक घटनाओं से निर्मुक्त नहीं है।

सबसे पहले आरा निवासी स्वर्गीय पण्डित नकछेदी तिवारी 'अजान कवि' लिखित पद्माकर का जीवन वृत्तांत विक्रमीय सम्वत् १६६४ में देवनागर के प्रथम अंक में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् सम्वत् १६६५ (सन् १६०८) विक्रमीय में हिम्मत बहादुर विरदावली में स्वर्गीय लाला भगवानदीन 'दीन' ने पद्माकर का जीवन-चरित्र लिखा। यह जीवन-चरित्र पद्माकर के वंशधरों द्वारा बताए गए तथ्यों तथा किंवदंतियों के आधार पर लिखा गया था। फिर इन्हीं दोनों जीवन-वृत्तान्तों के आधार पर मिश्र बंधुओं ने तथा हिंदी के अन्य इतिहासकारों ने पद्माकर का परिचय लिखा। किंतु इधर कुछ दिनों से हिंदी के अनेक मासिक पत्र-पत्रिकाओं में श्री भास्कर रामचंद्र भालेराव ने उक्त दोनों जीवन-वृत्तांतों में दिए गए अनेक तथ्यों का सप्रमाण खंडन प्रकाशित कराया है। अस्तु, पद्माकर के जीवन-संबंध में आज

तक के अनुसंधानों द्वारा जो कुछ भी परिचय प्राप्त हुआ है, उसका सारांश इस स्थल पर दिया जायगा।

पूर्व पुरुषों का परिचय

सम्राट अकबर के राजत्व-काल में वर्त्तमान मध्यप्रदेश में नर्मदा नदी के तट पर, गढ़ापत्तन नामक एक छोटा किंतु सुव्यवस्थित राज्य था, जिसका शासन महारानी दुर्गावती के अधीन था। संवत् १६१५ विक्रमीय (१५५८ ई०) में जीवन-संबंधी सुविधाओं से आकृष्ट हो एक तैलंगी ब्राह्मण मधुकर भट्ट मूँगी पट्टन, मधुपुरी, श्री रंगपट्टन तथा कालेश्वर आदि स्थानों से साढ़े सात सौ दाक्षिणात्य लोगों के साथ महारानी के राज्य में आ बसे * धीरे-धीरे ये लोग आमेर, झालावाड़, बूँदी, रतलाम, अनूपशहर, काशी, प्रयाग, कानपुर, आगरा, भदावर, बुंदेलखंड, आदि अनेक स्थानों में फैल गए। स्वयं मधुकर भट्ट अपने निकट-आत्म-संबंधियों के साथ व्रज में आ बसे। उनमें भी कुछ लोग मथुरा में बसे और कुछ लोग गोकुल में। कालांतर में मथुरानिवासी शाखा के कुछ लोग आजीविका के कारण बाँदा, बुंदेलखंड, सागर आदि स्थानों में रहने लगे। मधुकर

---

* वर्षे वाण रसा रसेन्दु मिलिते श्रीमद्गढ़ापत्तने।
रम्ये नर्मद कोट तीर्थ कलिते दुर्गावती पलिते॥
मूंगी पट्टनतोऽथवा मधुपुरी श्रीरङ्ग कालेश्वरात्।
संयाता किल दाक्षिणात्य विबुधाः सार्धं शतं सप्तच॥

वंशोपाख्यानम्।

भट्ट की पाँचवीं पीढ़ी में जनार्दन भट्ट उत्पन्न हुए। कहते हैं कि यह बाँदा में रहते थे। यहाँ पर उनके तृतीय पुत्र मोहनलाल भट्ट * का संवत् १७४३ विक्रमीय में जन्म हुआ। अपनी वयस्कावस्था में मोहनलाल संस्कृत और हिंदी के विख्यात विद्वान हुए। वे मंत्रशास्त्र के बहुत अच्छे ज्ञाता समझे जाते थे। अपनी विद्या के कारण नागपुर भोंसला घराने के अप्पा साहब रघुनाथराव० (बड़ा सागर) की सरकार में, हिंदूपति महाराज पन्नानरेश † के दरबार में तथा जयपुराधीश सवाई महाराज प्रतापसिंह की राजसभा में उन्हें यथेष्ट सम्मान मिला। संवत् १८१० विक्रमीय (सन १७५३ ई०) में इनके पुत्र पद्माकर

पद्माकर का जन्म

* यह एक विख्यात कवि थे। पहले यह पन्ना के बुंदेले महाराज हिंदूपति की सभा में रहे। अनंतर जयपुर के सवाई प्रतापसिंह (१७८८, १८०३ ई०) और सवाई जयसिंह (१८०३–१८१८ ई०) के दरबार में रहे। इन्हीं के पुत्र प्रसिद्ध कवि पद्माकर हुए और जिनके पोते गदाधर हुए।

—टाड राजस्थान खंड २ पृष्ठ ३७५ और ४१४ कलकत्ता संस्करण।

कहते हैं कि प्रथम आप अप्पा साहब रघुनाथराव की सरकार में मोसाहब हुए, तत्पश्चात् संवत् १८०३ में हिंदूपति महाराज पन्नानरेश के यहाँ मंत्र-गुरु की पदवी तथा पाँच गाँव की सनद प्राप्त की। अंत में सवाई महाराज प्रतापसिंह जयपुरनरेश के दरबार में एक हाथी, जागीर, स्वर्ण-पदक तथा कविराज-शिरोमणि की पदवी पाई। —नकछेदी तिवारी।

० यह नागपुर भोंसला घराने के थे, इनका मुख्य नाम रघुनाथराव था, पर अप्पा साहब के नाम से ही प्रसिद्ध थे। इन्होंने १८५६–१८५८ ई० तक राज्य किया।

ग्रियर्सन (माडर्न लिटरेचर आफ़ हिंदुस्तान)

का जन्म सागर ( वड़ा सागर ) में होना लिखा है; ० किंतु स्वयं पद्माकर ने जगद्विनोद अथवा रामरसायन आदि अपने बनाए हुए ग्रंथों के प्रकरणों के अंत में—इति श्री मथुरास्थ

---

† पन्ना के बुंदेले महाराज हिंदूपति की सभा में रूपसाही नाम के एक कायस्थ कवि थे ( सन् १८०० ई० के लगभग ) इनका निवास-स्थान पन्ना के निकट बाग महल में था। यह रूपविलास नाम की एक काव्य की पोथी के रचयिता हैं। यह पोथी सन् १७५६ ई० में बनी। इसमें इन्होंने लिखा है, कि छत्रसाल के पुत्र हिर्देसिंह (हिर्देस) हुए, जिनके पुत्र सोभासिंह हुए और इनके पुत्र हिंदूपति हुए।

—देवनागर-संपादक।

'जिले सागर में कुछ तैलगू ब्राह्मण हैं, जो कई पुश्तों से यहाँ आकर बस गए हैं और गोकुलस्थ कहलाते हैं, वे अब हिंदी बोलते हैं। लेकिन तेलगू के अवशेष उनकी बोली में मौजूद हैं। पद्माकर कवि, जो सागर जिले में पैदा हुए थे, अपने को तेलगू कवि और बुंदेलखंड का निवासी बतलाते हैं। कहते हैं राजा रघुनाथ राव ने उन्हें एक कवित्त पर एक लाख रुपये दिए थे। कवित्त का भाव यह है कि रघुनाथराव ने इतने हाथी दान किये कि पार्वती ने गणेश को अपनी गोद में इसलिये छिपा लिया कि हाथी के धोके में कहीं इन्हें भी राजा रघुनाथ राव दान न कर दें।'

० 'बुंदेली का इतिहास बहुत थोड़ा है और पन्ना के छत्रसाल और उनके उत्तराधिकारी तथा पूर्वाधिकारी राजाओं के समय से प्रारंभ होता है।' हिंदी-साहित्य के ख्यातनामा कवियों में एक पद्माकर हैं, जो सागर में पैदा हुए थे, उनकी कविता बहुत लोकप्रिय है और बुंदेली के रंग में रँगी है।'

—सागर डिस्ट्रिक गज़ेटियर।

मोहनलाल भट्टात्मज कवि पद्माकर विरचिते अमुक ग्रंथे अमुक प्रकरणम् समाप्तम्—ऐसा वाक्य लिखा है। इससे अनेक लोगों का अनुमान है, कि उनका जन्म मथुरा में ही हुआ था। साथ ही इससे यह भी अनुमान किया जाता है, कि उनके पिता का राजदरबारों में वैसा सम्मान नहीं था जैसा कि ऊपर लिखा गया है, वरन् वे मथुरानिवासी थे और विविध राजदरबारों में घूमकर यज्ञ-अनुष्ठान आदि ब्राह्मणवृत्ति के द्वारा अपनी उदर-पूर्ति करते थे। उनकी कविता भी चमत्कारपूर्ण नहीं है—इससे काव्य द्वारा धनोपार्जन की कल्पना भी किसी उर्वर मस्तिष्क का ही प्रसाद है। यद्यपि पिछले पक्ष के विपक्ष में टाड का राजस्थान रक्खा जा सकता है, पर किसी ठोस प्रमाण के अभाव में इस समय किसी के पक्ष में संमति नहीं दी जा सकती। अस्तु—

---

प्रसिद्ध साहसी छत्रसाल की राजधानी पन्ना, चरखारी, जो विक्रमसाही के समय प्रसिद्ध था और रीवाँ जो नेजाराम के समय से लेकर विश्वनाथसिंह के समय तक अपने कला-कौशल के कारण विख्यात था; वे तीनों स्थान केंद्र-स्वरूप थे, जहाँ काव्य-कला के प्रसिद्ध उत्तमोत्तम ग्रंथ रचे गए। इन ग्रंथों के रचयिताओं पर केशवदास और चिंतामणि त्रिपाठी की छाया पड़ी थी, जिनमें पद्माकर अत्यंत प्रसिद्ध हुए।

—ग्रियर्सन।

यह महाराज माधवसिंह के बेटे थे। पौष कृष्ण २ संवत् १८२१ को उत्पन्न हुए, वैशाख कृष्ण ३ संवत् १८३५ को गद्दी पर बैठे और श्रावण शुक्ल १३ संवत् १८६० को परलोकवासी हुए। यह स्वयं सत्कवि और कवियों के बड़े क़द्रदाँ थे।

—देवनागर।

अपने पूर्वजों के विद्याव्यसन के अनुरूप पद्माकर की बुद्धि भी तीव्र थी। थोड़े ही काल में उन्होंने संस्कृत-भाषा के अनेक शास्त्रीय ग्रंथों का अध्ययन समाप्त कर हिंदी-भाषा में भी योग्यता प्राप्त कर ली। पिता के पांडित्य की प्रसिद्धि तो पहले से ही थी, पुत्र का विद्या-व्यसन भी लोगों से छिपा नहीं रहा। सर्वप्रथम 'सुगरा' कुलपहाड़ (बुंदेलखंड) निवासी नोने अर्जुनसिंह पवाँर ने इन्हें अपने यहाँ निमंत्रित किया और एक लाख चंडी पाठ के द्वारा खड्ग की सिद्धि करवाकर इन्हें धन-धान्य से प्रसन्न कर अपना मंत्र-गुरु बनाया। तब से आज तक इन्हीं के वंशधर उस कुल के मंत्र-गुरु होते आ रहे हैं।

विद्याभ्यास

नोने अर्जुनसिंह को मंत्र-दान

बाँदा के नवाब अलीबहादुर के सेना-नायक गोसाईं अनूपगिरि उपनाम * हिम्मतबहादुर ने संवत् १८४९ विक्रमीय (सन् १७९२ ई०) में अजयगढ़ राज्य (बुंदेलखंड) पर चढ़ाई की। उस समय अजयगढ़ के राजा बखतसिंह बुंदेला नाबालिग थे। उनके अभिभावक नोने अर्जुनसिंह थे। हिम्मतबहादुर के

हिम्मतबहादुर के साथ

साथ बड़ी वीरतापूर्वक उनका युद्ध हुआ। पद्माकर उस युद्ध में हिम्मतबहादुर के साथ थे। उन्होंने उनकी कीर्ति में हिम्मतबहादुर-विरुदावली नामक काव्य की रचना की, जिसमें हिम्मतबहादुर द्वारा—जो हिम्मतबहादुर को कई बार परास्त कर चुके थे और जिसके ये मंत्र गुरु थे—उन्हीं नोने अर्जुनसिंह का मारा जाना लिखा है। किंतु जनश्रुति इसके विपरीत है। संभव है, पद्माकर ने जो लिखा है, वही सत्य हो; पर यह समझ में नहीं आता, कि नोने जैसे श्रेष्ठ वीर को छोड़कर उन्होंने हिम्मतबहादुर का साथ कैसे दिया। पद्माकर की यह व्यभिचारी-भक्ति उनके चरित्र पर कलंक लगाती है। इसके दोही कारण हो सकते हैं—या तो गुरु द्रोण के समान किसी धर्मसंकट वश उन्हें हिम्मतबहादुर का साथ देना पड़ा हो अथवा वे किसी बात से नोने अर्जुनसिंह से रुष्ट होकर उनके शत्रु हिम्मतबहादुर

---

जो संवत १८१९ ( सन् १७६४ ई० ) में अँगरेज सरकार और नवाब से हुई थी, घायल हुए। फिर नवाब ने बुंदेलखंड में इन्हें भेजा। वहाँ अलीबहादुर नवाब बाँदा की ओर से सेनानायक हो अजयगढ़-राज्य पर चढ़ाई की। फिर जब नवाब बाँदा से खटकी तो कई लड़ाइयाँ लड़कर अंत में अँगरेजी फ़ौज मँगाकर संवत १८५९ ( सन् १८०२ ई० ) में अँगरेजी कब्ज़ा करा दिया। नवाब बाँदा की पेंशन होगई। संवत् १८६० ( सन् १८०३ ई० ) में अँगरेजी सरकार से राज्य की सनद मिली। संवत १८६३ विक्रमीय में परलोक सिधारे। यह कवियों के बड़े गुणग्राही थे।

—भगवानदीन।

से जा मिले हों। किंतु यह भी बड़ी नीचता का कार्य कहा जायगा। हिम्मतबहादुर के योद्धा होने में कोई संदेह नहीं; उन्होंने अनेक युद्धों में अपने असीम साहस का परिचय दिया था; किंतु उन्होंने अपने हृदय में जिस कुटिल नीति को प्रश्रय दिया था, उससे अपने यहाँ के प्रचलित अर्थ में हम उन्हें वीर नहीं कह सकते। पद्माकर ने उनके युद्ध और पराक्रम का जो वर्णन किया है, वह यद्यपि अतिशयोक्ति से पूर्ण है, किंतु काव्य की दृष्टि से प्रशंसनीय है। उदाहरणार्थ यहाँ पर हिम्मतबहादुर विरुदावली से दो-तीन छंद दिये जाते हैं।

संवत अठारह सै सुनो, उनचास अधिक हिए गुनो।
वैसाख बदि तिथि द्वादसी, बुधवार युत यह यादसी।
यह सुभ सुदिन है लरन कौ, है युवा सुरनृप वरन कौ।
यह अजयगढ़ बलहीन है, जहँ अरिन डेरा कीन है।
नृप धीर बीर बली चढ्यो, सजि सेन सबल सुखेल की।
सुनि बंब बीरन के बढ़ी, हिय हौस वर बगमेल की।
प्रभु रित्त नित्त सुचित्त है, जगजित्त कित्त अनूप की।
वर बरनिए विरदावली, हिम्मतबहादुर भूप की।

हिम्मतबहादुर के दरबार में लाला ठाकुरदास भी एक कवि थे। वे जाति के कायस्थ थे और काव्य के लिये अपने समय में बहुत प्रसिद्ध थे। पद्माकर जी के साथ कभी-कभी उनकी नोंक झोंक हो जाया करती थी। एक बार हिम्मतबहादुर के यह पूछने पर कि लाला साहब की कविता कैसी होती है; पद्माकर ने उत्तर

दिया—'लाला साहब कविता तो बहुत उत्तम करते हैं, पर पद कुछ-कुछ हलके पड़ते हैं।' ठाकुर कवि को अपनी यह तीव्र आलोचना कैसे सह्न होती? उन्होंने भी कायस्थों की हाज़िर जवाबी के अनुरूप तत्काल उत्तर दिया 'जी हाँ, तभी तो हमारी कविता उड़ी-उड़ी फिरती है (अर्थात् खूब प्रसिद्ध है) पद्माकर से इसका कोई उत्तर देते न बना, जिससे वे बहुत ही लज्जित हुए।

रघुनाथराव की राजसभा में

संवत् १८५६ विक्रमीय (सन् १७९९ ई०) में जब कि रघुनाथराव को सागर की गद्दी मिली थी, पद्माकर जी उनकी राजसभा में गए और उनके दान तथा प्रताप के संबंध में दो कवित्त सुनाए जो नीचे दिए जाते हैं—

## दान की प्रशंसा में

संपति सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि,<br>
तुरत लुटावै विलंब उर धारै ना;<br>
कहै 'पद्माकर' सुहेम हय हाथिन के,<br>
हलके हजारन को वितर विचारै ना।<br>
गंज—गज बकस महीप रघुनाथराव,<br>
याही गज धोखे कहूँ काहु देइ डारै ना;<br>
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,<br>
गिरि तें, गरे तें, निज गोद तें, उतारै ना।

## तलवार की प्रशंसा में

दाहन तैं दूनी, तेज तिगुनी त्रिसूलहू तैं,
चिल्लिन तैं चौगुनी चलाक चक्र चाली तैं ;
कहै 'पद्माकर' महीप रघुनाथराव,
ऐसी समसेर सेर सत्रुन पै घाली तैं।
पाँच गुनी पव्व तैं पचीस गुनी पावक तैं,
प्रगट पचास गुनी प्रलय प्रनाली तैं ;
साठ गुनी सेस तैं, सहस्र गुनी स्रापन तैं,
लाख गुनी लूक तैं, करोर गुनी काली तैं।

कहा जाता है, कि इस प्रशंसा से प्रसन्न होकर रघुनाथराव ने पद्माकर को पारितोषिक में एक हाथी, दस गाँव तथा एक लाख रुपये प्रदान किए और अपनी सभा का दरबारी बनाया, परन्तु इसमें तथ्यांश कहाँ तक है, कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता।

लाला भगवानदीन जी ने पद्माकर के वंशधरों की किंवदंती के आधार पर लिखा है, कि 'रघुनाथराव के रनिवास का पद्माकर से कोई पर्दा न था। एक बार रघुनाथराव की रानी ने सावन के महीने में बिन्दुदार मेंहदी लगाई थी और वैसे ही हाथ पर मुँह रखे हुए वे सहज स्वभाव से लेटी हुई थीं। लेटे हुए उसी दशा में देखकर पद्माकर को यह उक्ति सूझी, जो निम्नलिखित कविता में कही है।

कै रति रंग थकी थिर ह्वै पलका पर प्यारी परी सुख पाय कै ;
त्यों 'पद्माकर' स्वेद के बुंद रहे मुकताहल से तन छाय कै।
बिंदु रचे मेंहदी के लसै कर तापर यों रह्यो आनन आय कै ;
इंदु मनो अरविंद पै राजत इंद्र बधून के वृंद बिछाय कै।

किंतु महाराष्ट्रों में मेंहदी लगाने की प्रथा नहीं है, इससे यह किंवदंती मिथ्या प्रतीत होती है।

महाराज प्रतापसिंह के दरबार में

कुछ काल पश्चात्, लाला भगवानदीन जी के कथनानुसार, संवत् १८५८ विक्रमीय में पद्माकर जी जयपुर गए। उस समय वहाँ की गद्दी पर श्री सवाई महाराज प्रतापसिंह जी विराजमान थे। ये स्वयं कवि तथा काव्यमर्मज्ञ थे। उन्होंने पद्माकर जी का यथेष्ट आदर-सत्कार किया तथा उन्हें अपने यहाँ का राजकवि नियत किया। पद्माकर जी ने उनकी प्रशंसा बड़ी ही ओजस्विनी भाषा में की है यथा:—

ज्वाला तें अदर तें फनिंद फूनकारन तें,
बाड़व की बाढ़हू तें विषम घनेरो है ;
कहै 'पदमाकर' प्रतापसिंह महाराज—
ऐसो कछु गालिब गुनाहिन पै हेरो है।
चक्रहू तें चिलिन तें प्रलै की बिजुलिन तें,
जम तुल्य जिल्लिन तें जगत बजेरो है ;
काल तें कराल त्यों कहर काल कालहू तें
गाज तें गजब्ब त्यों अजब्ब कोप तेरो है।

कहर को कोप किधौं कालिका को कोलाहल,
हलाहल को हौद लहराता लबालब को;
कहै 'पदकाकर' प्रतापसिंह महाराज,
तेरो कोप देख यों दुनी में को न दबको ?
चिल्लिन को चचा औ' बिजुल्लिन को बाप बड़ो,
बाँकुरो बबा है बड़वानल अजब को;
गब्बिन को गंजन गुसैल गुरु गोलन को,
गंजन को गंज गोल गुंबज गजब को।

भुवन धुंधरित धूलि धूलि धुंधुरित सुधुम्महु,
'पद्माकर' परतच्छ अच्छ लखि परत न भुम्महु,
भग्गत अरि परि पग्ग मग्ग लग्गति अँग अंगनि,
जँह प्रताप पृथिपाल ख्याल खेलत खुलि खग्गनि,
तहँ तब्बहि तोप तुंगनि तड़पि तत्तड़ात तेगनि तड़कि।
धुकि धड़ धड़ धड़ धड़ धड़ाधड़ धद्दड़ात धद्दा धड़कि।

पढ़त मंत्र अरु जंत्र अंत्र लीलत इमि जुग्गिनि,
मनहु गिलत मद मत्त गरुड़ तिय अरुण उरग्गिनि,
हरबरात हरखात प्रथम परसत पल पंगत,
जँह प्रताप जिति जंग रंग अंग अंग उमंगत,
तहँ 'पद्माकर' उतपत्ति अति रण रकत नद्दिय बहति।
लख चकित चित्त चव्वीन चुभि चक चकात चंढिय रहति।

झलकत आवै झुंड झिलम झपान झप्यो,
तमकत आवै तेग वाही औ' सिलाही हैं ;
कहै 'पद्माकर' त्यों दुंदुभी धुकार सुने,
अकबक बोलत गमीन औ' गुनाही हैं।
माधव को लाल कालहू ते विकराल दल,
साजि धायो ऐ दई दई धौ कहा चाही है ?
कौन को कलेऊ धौं करैया भयो काल अरु,
कापै धौं परैया भयो गजब इलाही है !

गोला से गयंदन के गोल खेलिबे को झिलै,
रान के इसारे लेत बान के उचट्टा से ;
कहै 'पद्माकर' प्रतापसिंह महाराज,
बकसे तुरंग जे उमंग उठे वट्टा से।
आछे अच्छरीन के कटाच्छन से लच्छ गुने,
पच्छ बिन अच्छ अंतरिच्छ घन घट्टा से ;
चक्रत में चाक से चतुर्मुख से चौहट से,
उलट पलट्टे में पढ़ैतन के पट्टा से।

उच्छलत सुजस विलच्छ अनवच्छ दिच्छ,
दिच्छन हूँ छीरधि लों स्वच्छ छाइयतु है,
कहै 'पद्माकर' प्रतापसिंह महाराज,
अच्छन में ओज परतच्छ पाइयतु है।

पच्छ बिन लच्छ लच्छ बिकल बिपच्छ होत,
गच्छिन के गुच्छ पर गुच्छ लाइयतु है;
पटकत पुच्छ कच्छ कुच्छ पर संग जब,
तुच्छ कर मुच्छ पर हाथ लाइयतु है।

पंथ परिवार निज द्वारन को छाड़ि,
दावादारन को भाजे कौन सौदा करे जात हैं;
कहै 'पदमाकर' सुनीरन में तीर त्योंही,
तानि के कमानन में रौदा धरे जात हैं।
साहब सवाई श्री प्रताप दल सजत है,
बिहद नद नदिन में पौदा परे जात हैं;
सौदा बिजै बृंदन की लादिबे को मानों मद-
मैकल मतंगन पै हौदा धरे जात हैं।

पारावार पार लौं अपार झिलि झारन,
अरिंदन पै हाल प्रलै काल के परा परैं;
कहै 'पदमाकर' त्यों ठौर-ठौर दौर-दौर,
दीह दावादारन पै दार के दरा परैं।
साहब सवाई सी प्रतापसिंह तेरे धाक,
धरा के धरैया धक धक्कन धरा परैं;
चंड चक्र चाप लौं वदंड दंड दाप लौं,
सुमारतंड ताप लौं प्रताप के छरा परैं;

कंदरन हहरैं अरिंदन की नहरैं,
सुनहरैं उठी धौं कापै कहर कलाप की ;
कहै 'पदमाकर' छतीस छत्रधारिन को,
पारी सी चढ़ी है ज्यों तिजारी तन ताप की।
बूझत हौं तुम्हें महाराज स्री प्रतापसिंह,
कुटिल कला है किधौं कपिल सराप की ;
इंद्र की अटा लौं नरसिंह की सटा लौं,
मारतंड की छटा लौं छटा छहरै प्रताप की।

महाराज प्रतापसिंह जी वीर और प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति थे। वे गुणज्ञ थे और गुणियों का आदर करना जानते थे। कहते हैं, उन्होंने पद्माकर की काव्य-शक्ति से प्रसन्न होकर उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और उन्हें अपने यहाँ का राज्य-कवि नियुक्त किया तथा अपने जीवन-पर्यंत उन्हें कहीं अन्यत्र न जाने दिया।

पद्माकर जी के संबंध में दो-एक किस्से रत्नाकर जी भी कहा करते थे।

'काशी में पहले श्रावण के महीने में शंकु-उद्धार का मेला हुआ करता था। आज-कल जहाँ बनारस का वाटर-वर्क्स है, उसके पीछे बड़ा भारी तालाब है। वहीं यह मेला जमता था। उसमें गौनहारिनें गाती हुई चलती थीं, और गुंडे लोग उनके साथ लट्ठ लिए हुए और उन पर बोली-ठोली छोड़ते चलते थे। एक बार जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह के साथ पद्माकर श्रावण के

महीने में काशी पधारे और इस मेले में गए। गुंडे लोग बोली छोड़ते हुए कह रहे थे—'रंग है री रंग है!' महाराजा प्रतापसिंह जी इसका अर्थ न समझ सके। उन्होंने पद्माकर को इशारा किया कि क्या बात है। उन्होंने तुरंत ही यह कवित्त बनाकर सुना दिया—

सावन सखीरी मनभावन के संग बलि,
क्यों न चढ़ि झूलत हिंडोरे नवरंग पर;
कहै 'पद्माकर' त्यों जोबन उमंगनि तैं,
उमँगि उमंगित अनंग अंग-अंग पर।
चारु चूनरी की चारो तरफ तरंग तैसी,
तंग अंगिया है तनी उरज उतंग पर;
सौतन के वदन बिलोके बदरंग होत,
रंग है री रंग तेरी मेंहदी सुरंग पर।

महाराजा प्रतापसिंह बड़े प्रसन्न हुए और एक हज़ार मुहर उन्होंने पद्माकर को इनाम में देने के लिए कहा। पद्माकर संकट में पड़ गए। वे नम्रता पूर्वक बोले,—महाराज, मैं काशी का दिया हुआ दान नहीं ले सकता।' महाराज ने कहा अब तो हम संकल्प कर चुके, तुम्हें लेना ही होगा। पद्माकर को मजबूर होकर दान लेना पड़ा, पर उन्होंने तुरंत ही अपनी ओर से उसमें कई सौ मुहरें मिलाकर काशी के पंडितों को बाँट दिया। एक बनात और एक-एक मुहर प्रत्येक पंडित की सेवा में अर्पित किया। काशी के नंदनसाही मुहल्ले के पंडित श्यामाचरण जी

के पुत्र पंडित अयोध्यानाथ जी के पास जीर्ण-शीर्ण अवस्था में वह बनात रत्नाकर जी ने स्वयं देखी थी।

पद्माकर जी बड़े ठाट-बाट से रहते थे। यात्रा में उनके साथ हाथी, दो-चार ऊँट, बीसियों सवार और अनेक रथ तथा रथों में दस-पाँच वेश्याएँ भी चलती थीं। एक बार उनको आते हुए देख कर किसी ग्राम के निवासियों को यह आशंका हो गई कि कोई राजा चढ़ आया है। उस समय पद्माकर ने एक कवित्त कहकर उन लोगों की आशंका दूर की। कवित्त का अंतिम चरण था:—
'हम कविराज हैं प्रताप महाराज के।'

जयपुर में एक बाग है, जहाँ सावन के महीने में लोग झूलने के लिए जाया करते हैं। महाराज प्रतापसिंह भी वहाँ गए और उन्होंने पद्माकर को समस्या दी—"सावन में झूलिबो सुहावनों लगत है"—इसकी पूर्ति पद्माकर ने इस प्रकार की:—

भौरन को गुंजन बिहार बन कुंजन में,
मंजुल मल्हारनि को गावनों लगत है;
कहै 'पदमाकर' गुमान हूँ तैं, मानहूँ तैं,
प्रानहूँ तैं प्यारो मन भावनो लगत है।
मोरन को सोर घनघोर चहुं ओरन,
हिंडोरन को वृंद छवि छावनों लगत है;
नेह सरसावन में मेह बरसावन में,
सावन में झूलिबो सोहानों लगत है। *

* विशाल भारत भाग ८ अङ्क ३।

एक बार महाराज प्रतापसिंह के दरबार में एक बाँसुरी बजाने वाला आया; उस समय वहाँ पर पद्माकर भी मौजूद थे। उसकी बाँसुरी सुन कर महाराज बहुत प्रसन्न हुए और आँखों से आँसू निकल आया तब उन्होंने पद्माकर की ओर देख कर इस समस्या को कहा—"बाँसुरी बजत आँख आँसुरी ढरक परै।" पद्माकर ने उसी समय तुरन्त बैठ कर उसकी पूर्ति इस प्रकार की:—

> बैठी धनि बानिक मनि मानिका महल मध्य,
> अंग अलबेली के अचानक थरक परैं;
> कहै 'पदमाकर' तहाँई तन तापन तैं,
> बारन तैं मुकता हजारन दरक परैं।
> बाल छतियाँ ते थक थक न कढ़त मुख,
> बकना कढ़त कर ककना सरक परै;
> पाँसुरी पकरि रही साँसुरी सँभारै कौन,
> बाँसुरी बजत आँख आँसुरी ढरक परै।

इस पर महाराज ने एक लक्ष मुद्रा पद्माकर को और एक लक्ष मुद्रा बाँसुरी बजानेवाले को दिया।

महाराज प्रतापसिंह जी से पद्माकर जी को बहुत सुख मिला। यदि वे अधिक दिनों तक इस संसार में जीवित रहते तो मालूम नहीं पद्माकर जी के लिए क्या कर जाते। पर संवत १८६० वि० में ३९ वर्ष की अल्पावस्था में ही उनका स्वर्गवास हो गया। इससे पद्माकर को बड़ा दुःख हुआ। कहते हैं, कि महाराज के उस

वियोग दुःख में उन्होंने अनेक छंदों की रचनाएँ कीं। किंतु इस समय एक ही प्राप्य है, जिसे उन्होंने महारानी के सती होने की स्मृति में लिखा है, वह नीचे दिया जाता है।

पाली पैज पन की प्रवेस करि पावक मैं,
पौन से सिताय सह गौन की गती भई।
कहै 'पदमाकर' पताका प्रेम पूरन की,
प्रगट पतिव्रत की सौ गुनी रती भई॥
भूमि हूँ, अकास हूँ, पताल हूँ सराहै सब,
जाकौं जस गावत पवित्र मो मती भई।
सुनत पयान स्त्री प्रताप को पुरंदर पै,
धन्य पटरानी जोधपुर मैं सती भई॥ ⊛

महाराजा जगतसिंह के दरबार में

सवाई महाराजा प्रतापसिंह के पश्चात सवाई महाराजा जगतसिंह श्रावण शुक्ल १४ संवत् १८६० वि० को राजगद्दी पर बैठे। उस समय पद्माकर ने महाराज को नीचे लिखे कवित्त में अपना परिचय दिया:—

---

⊛ संवत १८५७ वि० में कुंवर फतहसिंह की बेटी महाराजा प्रताप सिंह को ब्याही गई थी, जो महाराज के देहांत के समय जोधपुर में थी। जयपुर से खबर आने पर वह भादों वदी ६ संवत् १८६० वि० को सती हुई। 'मंडोर' में दाह हुआ। जयपुर के इतिहास में भी जोधपुर की राठौर रानी का महाराजा के साथ सती होना लिखा है।

—देवीप्रसाद ( इतिहास जोधपुर )

भट्ट तिलंगाने को, बुंदेलखंड वासी कवि,
सुजस प्रकासी 'पद्माकर' सुनामा हौं।
जोरत कवित्त छंद छप्पय अनेक भाँति,
संस्कृत प्राकृत पढ़ो जु गुन ग्रामा हौं॥
हय, रथ, पालकी, गयंद, गृह, ग्राम चारु,
आखर लगाय लेत लाखन को सामा हौं।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगतसिंह,
तेरे जान तेरो वह विप्र मैं सुदामा हौं॥

पिता की गुण-ग्राहकता पुत्र में भी थी। उन्होंने पिता से बढ़कर पद्माकर का आदर-सत्कार किया और अपने दरबार का राज-कवि बनाया * राजतिलकोत्सव पर पद्माकर ने जो कवित्त पढ़े थे, उनमें से एक इस स्थल पर दिया जाता है:—

प्रबल प्रताप कुल दीपक छता के पुन्य,
पालक पिता के राम राजा ज्यों भगतराज।
कान्ह अवतार वैरी बारिध मथन काज,
सील के जहाज बली बिक्रम तखतराज॥

---

* भादों सुदी अष्टमी संवत् १८७० को महाराजा मानसिंह की शादी जयपुर के महाराजा जगतसिंह की बहन से और दूसरे दिन महाराजा जगतसिंह की शादी महाराजा मानसिंह की बाई से गाँव (रूपनगर) एलाके राज किशनगढ़ में हुई महाराजा जगतसिंह के साथ कवि पद्माकर था। उससे और कविराज कालिदास से चरचा हुई थी।

—मुंशी देवीप्रसाद (इतिहास जोधपुर)

म्लेच्छ अंधकार मेटिवे को मारतंड दिन,
दूलह दुनी के हिंदुवान के नरतराज।
पारथ से, पृथु से, परिच्छित पुरंदर से,
जादो से, जजाति से, जनक से जगतराज॥

महाराज ने पद्माकर की कवित्व-शक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें यथेष्ट पुरस्कार द्वारा संतुष्ट किया तथा जगद्विनोद नामक ग्रंथ के रचने की आज्ञा दी, जिसे उन्होंने बड़ी सफलता पूर्वक पूर्ण किया। स्वर्गीय लाला भगवान दीन जी का कथन है कि इस ग्रंथ पर कवि को १२ हाथी, १२ ग्राम तथा १२ लाख मुद्रा पारितोषिक में मिला। जगद्विनोद में जिन कविताओं का संग्रह है उनमें से अनेकों की रचना रघुनाथ राव के दरबार-काल में हुई थी। इसके प्रमाण में लाला जी ने निम्न लिखित कवित्त और तत्संबंधी किंवदंती लिखी है।

एकै संग धाए नंदलाल औ, गुलाल दोऊ,
दृगन गए जो भरि आनँद मढ़ै नहीं।
धोय धोय हारी 'पद्माकर' तिहारी सौंह,
अब तौ उपाय एकौ चित्त पै चढ़ै नहीं॥
कैसी करौं, कहाँ जाउँ,कासौं कहौं, कौन सुनै ?
कोऊ तौ निकासो जासौं दरद बढ़ै नहीं।
एरी मेरी बीर! जैसे तैसे इन आँखिन तैं—
कढ़िगौ अबीर, पै अहीर कौ कढ़ै नहीं॥

यह कवित्त जगद्विनोद में विषाद के उदाहरण में आया है।

इससे स्पष्ट है कि उन्होंने पेट की [illegible] को [illegible] पूरी तरह अनुभव किया था। जो कुछ भी हो जब तक उनके जीवन-विषयक पुष्ट प्रमाण नहीं उपलब्ध हो जाते उनकी साम्प्रदायिक स्थिति के संबंध में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

**इष्ट देव**

स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी ने लिखा है कि पद्माकर जी को तारा देवी का इष्ट था; इसी से उनकी वाणी में जोर था। किन्तु यह भी एक विवादग्रस्त प्रश्न है। यदि तारा देवी का पद्माकर जी को इष्ट होता तो अवश्य ही उनके संबंध में उनकी प्रचुर रचना पाई जाती। पर अब तक कहीं तारा देवी के संबंध में पद्माकर का एक भी छंद हमारे देखने में नहीं आया। हमें तो तारा देवी के स्थान पर पद्माकर जी राम-भक्त अधिक प्रतीत होते हैं। राम के संबंध में उनकी रचनाएँ भी यथेष्ट पाई जाती हैं और भक्तों की वाणी में अपने इष्टदेव के प्रति जो एक विश्वास की भावना नृत्य करती रहती है; उसका पद्माकर के राम-संबंधी काव्य में स्पष्ट दर्शन मिलता है।

अपने कथन की पुष्टि में यहां पर हम उनके दो-चार छंदों का देना आवश्यक समझते हैं। पद्माकर जी को अपने वार्धक्य-काल और दशरथ-नंदन के विस्मरण का भारी पश्चाताप था।
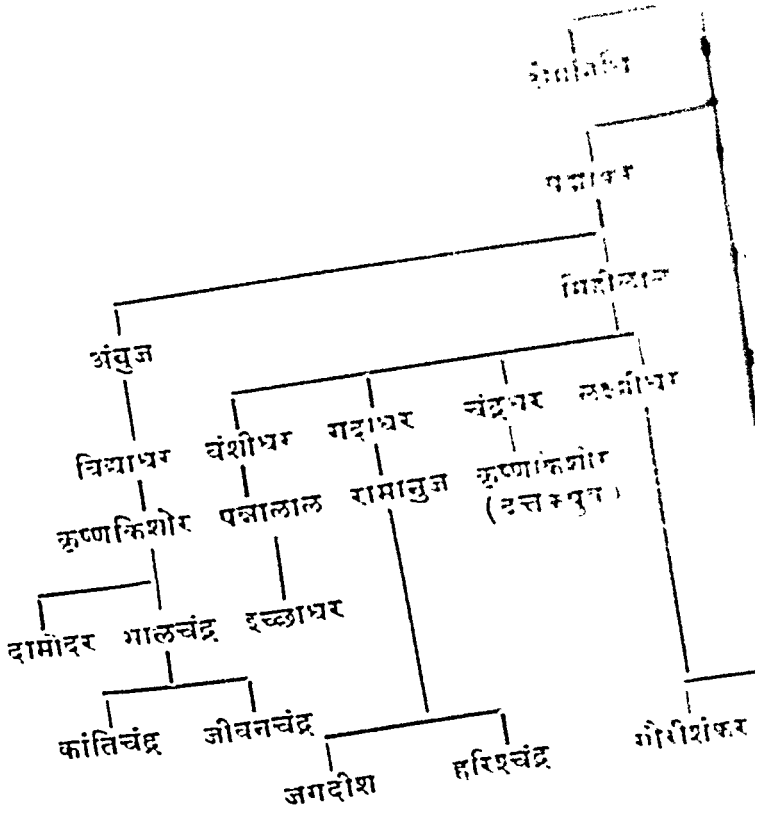
पद्माकर ने अपने उक्त छंदों में राम के प्रति जैसे उद्गारों को प्रकट किया है वैसा कोई भक्त ही कर सकता है। 'रैन दिन आठो जाम राम राम राम राम सीताराम सीताराम सीताराम कहिए' यह लिख कर तो उन्हों ने अपने को परम वैष्णव प्रमाणित कर दिया है। किंतु इसके विपरीत कुछ लोग उनके शैव होने का भी अनुमान करते हैं। शिव के संबंध में भी उनकी अनेक रचनाएँ मिलती हैं, जो भक्ति-भाव से परिपूर्ण हैं। शिव-संबंधी उनका निम्नांकित छंद बहुत ही प्रसिद्ध है :—

देव, नर, किन्नर अनेक गुन गावत,
पै पावत न पार जा अनंत गुन पूरे को ;
कहै 'पद्माकर' सुगाल के बजावत ही,
काज करि देत जन जाचक जरूरे को।
चंद्र की छटान जुत, पन्नग फटान जुत,
मुकुट बिराजै जटा जूटन के जूरे को ;
देखो त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ,
पैये फल चार फूल एक दे धतूरे को॥

पद्माकर के शैव होने के संबंध में जो सब से अधिक पुष्ट प्रमाण पाया जाता है, वह है उनके प्राप्त चित्रों में उनका त्रिपुंड से अलंकृत स्वरूप। संभव है, कि वे शैव ही रहे हों और जिस प्रकार राम-भक्त होते हुए भी तुलसी दास ने शिव-कीर्त्तन किया है, उसी प्रकार इन्होंने शिव-भक्त होकर भी राम-कीर्त्तन किया हो। पर तारा देवी के उपासक तो ये किसी प्रकार प्रतीत नहीं होते।

---

# ३

## पद्माकर के ग्रंथ

पद्माकर जी के लिखे हुए कुल नव ग्रंथ कहे जाते हैं (१) हिम्मतबहादुर-विरुदावली (२) जगद्विनोद (३) पद्माभरण (४) जयसिंह-विरुदावली (५) आलीजाह-प्रकाश (६) हितोपदेश (७) राम-रसायन (८) प्रबोध-पचासा और (९) गंगालहरी ये ही उनके नव अमर कीर्ति-स्तंभ है। इनमें से जयसिंह विरुदावली, आलीजाह-प्रकाश और हितोपदेश अभी अप्रकाशित हैं। यहां पर पद्माकर जी के उपलब्ध ग्रंथों का संक्षेप में परिचय देना अनुपयुक्त न होगा।

हिम्मतबहादुर कुल पहाड़ के एक सनाढ्य ब्राह्मण के लड़के थे। इनका असली नाम अनूप गिरि था। इनके एक ज्येष्ठ भाई थे जिनका नाम उमराव गिरि था। इन दोनों भाइयों को इनकी माता ने गोसाईं राजेन्द्र गिरि को सौंप दिया था। उन्होंने इनका लालन-पालन किया और शिक्षा-दीक्षा दी। २० वर्ष की अवस्था में ये लखनऊ के नवाब शुजाउद्दौला की फौज़ में नौकर हुए और उन्हींके द्वारा इनको हिम्मतबहादुर की उपाधि मिली। सं० १८२० में नवाब से और ईस्ट-इंडिया-कंपनी से बक्सर में एक युद्ध हुआ जिसमें नवाब की हार हुई, पर इनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर उसने इन्हें रजधान की जागीर दी। तभी से ये तथा इनके वंशज रज-धानिया गोसाईं कहलाए। एक बार इनकी और करामत खां की मातहती में कुछ सेना देकर नवाब बहादुर ने बांदा के महाराज गुमानसिंह से युद्ध के लिए भेजा। उस समय गुमानसिंह के सेनापति अजयगढ़वाले नोने अर्जुनसिंह पँवार थे। उन्होंने उस युद्ध में इन्हें बुरी तरह पराजित किया। महाराज गुमानसिंह की मृत्यु के बाद, जब कि उनके राज्य की शक्ति क्षीण हो रही थी, पूना के नाना फरनवीस के सेना-नायक नवाब अलीबहादुर तथा राजा चरखारी को, जो कि उस राज्य के शत्रु हो रहे थे, मिलाकर इन्होंने पुनः सं० १८४६ में उस राज्य पर चढ़ाई की। अजयगढ़ और बनगाँव के बीच की भूमि में नोने अर्जुनसिंह से घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में कवि पद्माकर, जो कि अर्जुनसिंह के दीक्षा गुरु थे,

हिम्मतबहादुर विरुदावली

हिम्मतबहादुर के साथ रहे और उन्होंने अपनी आँखों उस युद्ध को देखा था। उसी युद्ध का वर्णन हिम्मतबहादुर-विरुदावली में किया गया है। इसके बाद शमशेरबहादुर आदि से उनके कई युद्ध हुए तथा सं० १८६१ में देहांत हुआ।

हिम्मतबहादुर-विरुदावली पद्माकर के प्राप्त काव्यों में एक मात्र वीर-काव्य-प्रधान ग्रंथ है। इसमें दो सौ बारह छंद हैं और पांच अंशों में विभक्त है। प्रत्येक के अंत में एक हरिगीतिका छंद है जिसकी अंतिम दो पंक्तियां निम्न भांति सब में एकसी हैं।

पृथु रित्ति निरित्ति सुचित्त दै जग जित्ति कित्ति अनूप की।
वर वरनिए विरुदावली हिम्मतबहादुर भूप की॥

प्रथम अंश में श्रीकृष्ण से हिम्मतबहादुर को विजय देने की प्रार्थना की गई है। दूसरे अंश में नायक की प्रशंसा में उनके द्वारा गूजरों का परास्त होना, महाराज छत्रसाल द्वारा संस्थापित राज्यों पर अधिकार पाना तथा बादशाहों को भी कंपित करने वाले हिम्मतबहादुर का नोने अर्जुनसिंह पर चढ़ाई तथा सेना आदि का उल्लेख है। तीसरे सर्ग में दोनों पक्ष की सेनाओं के सामना होने और गोलाबारी का वर्णन है। चौथे सर्ग में उनका युद्ध और पाँचवें सर्ग में हिम्मतबहादुर द्वारा नोने अर्जुनसिंह का मारा जाना वर्णित है।

इस पुस्तक की शब्दावली और वर्णन-शैली प्राचीन है तथा प्राकृतिक शब्दों का भी यथेष्ट प्रयोग मिलता है। प्राचीन वीर काव्य की शैली के विचार से पद्माकर का यह काव्य बुरा नहीं कहा जा सकता।

तुपक्कैं तड़क्कैं धड़क्कैं महा हैं,
प्रलै चिल्लिका सी झड़क्कैं जहाँ हैं ;
खड़क्कैं सरी वैरि छाती भड़क्कैं,
सड़क्कैं गए सिंधु मज्जैं गड़क्कैं।

चलैं गोल गोली अतोली सनंकैं,
मनौं भौंर भौंरैं उड़ाती भनंकैं ;
चढ़ीं आसमानैं छईं वेप्रमानैं,
मनौं मेघमाला गिलैं भासमानैं॥

गिरैं ते मही मैं जहीं भर्भराकैं,
मनौं स्याम ओरैं परैं झर्झराकैं ;
चलैं रामचंगी धरा मैं धमंकैं,
सुने तैं अवाजैं वली वैरि संकैं।

तमंचे तहाँ वीर संचे छुड़ावैं,
कसे वंक वानैं निसानैं उड़ावैं ;
छुटी एक कालैं विसालैं जँजालैं,
जगी जामगीं त्यौं चलैं ऊँटमालैं।

गजैं गाजसीं छूटतीं त्यौं गनालैं,
सुनैं लज्जती गज्जती मेघमालैं ;
चलीं मूँगरी उच्च ह्वै आसमानैं,
मनौं फेरि स्वर्गौं चढ़े दिग्घ दानैं।

परी एक धारै घना घन घेरा है,
मनौं ए गिरी इंद्र हू की गदा है ;
किधौं ए बिमानन की चक्र झुंडैं,
परी टूटि है के बिराजै भसुंडैं।

छुटी है भचाका महाबानवाली,
दही है मनो कोपि कै पन्नगाली।
खरी कुहकुहाली जुड़ाती नहीं हैं,
चलीं हैं अनंतैं दिगंतैं दही हैं।

चली चद्दरैं त्यों मचे हैं धड़ाके,
छड़ाके फड़ाके सड़ाके खड़ाके ;
छुटे सेरबचे भजे बीर कच्चे,
तजैं बाल बच्चे फिरैं रात दच्चे।

छूटे सब्ब सिप्पे करैं दिग्ध टिप्पे,
सबै सत्रु छिप्पे कहूँ हैं न दिप्पे ;
करावीन छुट्टैं करैं बीर जुट्टैं,
करी कंध टुट्टैं हुतै रत्त बुट्टैं।

चली तोप धाँ धाँ धधाँ धाँइ जग्गी,
धद्दा धड़ धड़ाधड़ धड़ा होन लग्गी ;
झड़ा झड़ झड़ा बीर बाँके छुड़ावैं,
भड़ाभड़ भड़ाभड़ भड़ा त्यौं मचावैं।

दगो यों अरावो सबै एक वारैं,
किधौं इंद्र कोप्यौ महा वज्र डारैं;
किधौं सिंधु सातो सबै भर्भराने,
प्रलैकाल के मेघ कै घर्घराने।

सुनीं जो अवाजैं सबै वैरि भाजैं,
न लाजैं गहैं छोड़ि दीन्ही समाजैं;
तजैं पुत्र दारैं सम्हारैं न देहैं,
गिरैं दौरि उट्टैं भजैं फेरि जेहैं।

उलथ्थैं पलथ्थैं कलथ्थैं कराहैं,
न पावैं कहूँ सोक सिंधू न थाहैं;
तजैं सुंदरी त्यों दरी मैं धसे हैं,
तहाँ सिंह वघ्घानहूँ ने ग्रसे हैं।

जगद्विनोद जगद्विनोद रस संबंधी ग्रंथ है। पद्माकर जी जब जयपुराधीश महाराज जगतसिंह के दरबार में थे, तो उन्हीं की आज्ञा से इसकी रचना हुई थी। यथा:—

जगतसिंह नृप जगत हित, हर्ष किए निधि नेहु।
कवि 'पद्माकर' सो कह्यो, सरस ग्रंथ रचि देहु॥

इस ग्रंथ में प्रायः ४२२ दोहे १४२ कवित्त १२७ सवैये ३ छप्पय छंद हैं, जिनमें से लगभग ३०० दोहे लक्षणों के लिखने के उपयोग में आए हैं और अन्य छंद उदाहरणों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। यह ग्रंथ दो खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड में

मंगलाचरण के पश्चात महाराज जगतसिंह की प्रशंसा और फिर नायिका-भेद लिखा गया है। दूसरे खंड में उद्दीपन विभाव, अनुभाव, संचारीभाव और रस का वर्णन है। प्राचीन परिपाटी के अनुसार अन्य रसों की अपेक्षा इसमें शृंगार रस का वर्णन अधिक विस्तार से किया गया है।

संस्कृत की व्याख्या-प्रणाली के अभाव के कारण हिंदी के लक्षण-ग्रंथों में जो दोष पाए जाते हैं, जगद्विनोद उनसे निर्मुक्त नहीं है। यद्यपि अन्य लक्षण-ग्रंथों की अपेक्षा जगद्विनोद अधिक सुबोध तथा सरल है, तथापि उसके लक्षण भी कहीं कहीं भ्रामक और अशुद्ध हो गए हैं। यथा:—

प्रौढ़ाधीरा नायिका का लक्षण है:—

प्रगल्भा यदि धीरा स्याच्छन्नकोपाकृतिस्तदा ;
उदास्ते सुरते तत्र दर्शयन्त्यादरान बहिः।

अर्थात् जो रमणी अपराधी नायक पर प्रत्यक्ष कोप न प्रकट करे वरन उसे छिपाकर ऊपर से आदर दिखाए तथा रति से उदासीन रहे उसे प्रौढ़ाधीरा नायिका कहते हैं। किंतु जगद्विनोद में निम्न लक्षण दिया गया है:—

उर उदास रति से रहै, अति आदर की खान ;
प्रौढ़ाधीरा नायिका ताहि लीजिए जान।

यह लक्षण अपनी अस्पष्टता के कारण भ्रामक एवं अशुद्ध हो गया है। इसी प्रकार कुछ उदाहरणों में भी त्रुटियाँ पाई जाती हैं।

मध्याधीरा नायिका के लक्षण में कहा गया है कि :—

कोप जनावै व्यंग सों तजै न पति सम्मान ;
मध्याधीरा कहत हैं ताको सुकवि सुजान ।

अर्थात् पति में अन्य स्त्री के रति-सूचक चिन्ह देखकर धैर्य्य तथा मान पूर्वक व्यंग वचनों द्वारा कोप प्रकट करनेवाली रमणी को मध्याधीरा नायिका कहते हैं। इसके उदाहरण में निम्नांकित कवित्त है—

प्रीतम के संग ही उमँगि उड़ि जैवे को,
न एती थंग अंगन परंद पँखियाँ दईं ;
कहै 'पदमाकर' जे आरती उतारैं, चौंर—
ढारैं श्रम हारैं पै न ऐसी नखियाँ दईं ।
देखि दृग द्वैही सों न नेकहूँ अघैये, इन—
ऐसे झुका झुक में झपाकें झकियाँ दईं ;
कीजै कहा राम ! स्याम आनन बिलोकिबे को,
बिरचि बिरंचि ना अनंत अँखियाँ दईं ।

काव्य की दृष्टि से यद्यपि यह एक उत्तम छंद है, परंतु जिस लक्षण के उदाहरण में यह दिया गया है, उसके उपयुक्त नहीं है। लक्षण के अनुसार सादर व्यंग नायक के प्रति होना चाहिए, पर इस छंद में कोई रमणी अपनी हृदय-अभिलाषा अपनी किसी सखी पर प्रकट कर रही है। इसमें प्रीतम आदि शब्द मध्यम पुरुष के रूप में नहीं, बल्कि अन्य पुरुष के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इसी से इसे नायक के प्रति कहा हुआ व्यंग नहीं समझा जा सकता।

संकर संसृष्टि भेदादि लिखे गए हैं। इसमें भी एकही दोहे के पूर्वार्द्ध में अलंकार-लक्षण और उत्तरार्द्ध में उदाहरण दिया गया है। यथाः—

मालोपम उपमेय इक, ताके बहु उपमान ;
जस दिग्गज मद्धार सों, इक मुख बचन बिधान।

कुछ लोगों का अनुमान है कि पद्माभरण महाराज जसवंत सिंह कृत भाषा-भूषण ग्रंथ के आधार पर लिखा गया है। पर हमारा विचार इसके विपरीत है। वास्तविक बात तो यह है, कि भाषा-भूषण भी चंद्रालोक के आधार पर लिखा गया है और पद्माभरण भी। इससे दोनों ग्रंथों में कुछ समता आगई है। पद्माकर ने चंद्रालोक का आधार मानते हुए भी पद्माभरण की रचना में स्वतंत्रता से काम लिया है। पद्माभरण के उदाहरण चंद्रालोक या भाषा-भूषण से सर्वथा पृथक हैं और लक्षणों में भी कहीं-कहीं अंतर पड़ गया है। असंगति अलंकार का लक्षण और उदाहरण चंद्रालोक में इस प्रकार दिया है।

आख्याते भिन्न देशत्वे कार्य हेत्वो रसङ्गतिः।
त्वच्चकानां नमत्पङ्क्त भङ्गमेति सवक्रमः॥

भाषा-भूषण में इस तरह लिखा है :—

और काज आरंभिए, औरै करिए दौर।
कोयल मदमाती भई, झूलत अंबा-मौर॥

और पद्माकर ने यह कहा है :—

सु असंगति कारन कहूँ, कारज औरै ठाँहि।
तिय उरजन नखछत लगे, पिया सौत-उर माँहि॥

इन लक्षणों में भाषा-भूषण का लक्षण भ्रमात्मक है। हिंदी के अलंकार-ग्रंथों में पद्माभरण बहुत ही सरल और सुबोध है और भाषा-भूषण की अपेक्षा वह अधिक उत्तम हुआ है। इस ग्रंथ में कुछ बहुत ही सुंदर सूक्तियों का संकलन पाया जाता है जिनमें से कुछ यहाँ पर दी जाती हैं:—

दृग सों जस्यो जु काम, तिहि दृग सों ज्यावत जोइ ;
सिव हू की जितवार तिय, ताहि भजो सब कोइ।
भसम जटा विष अहि सहित, गंग कियो तैं मोहिं ;
भोगी तैं जोगी कियो, कहा कहौं अब तोहिं।
छुटी न गाँठ जु राम सौं, तियन कह्यौ तिहि ठाँहिं ;
सिय कंकन को छोरियौ, धनुष तोरिबौ नाहिं।
नृपति राम के राज मैं, है न सूल दुख-मूल ;
लखियत चित्रन मैं लिख्यो, संकर के कर सूल।
चख, झख, बार, सिवार, मुख, सरसिज गमन मराल ;
छबि तरंग पानिप सलिल, बाल मानसर-ताल।
बैन सुन्यौ जब तैं मधुर, तब तैं सुनत न बैन ;
नैन लगे जब तैं लख्यो, तब तैं लगत न नैन।
तुव अधरन के हित सुरन, मथि लिय अमृत जु सार।
सोई तुमरु दुख सों अहै, अब लगि सिंधु सखार॥

राम-रसायन वाल्मीकीय रामायण के प्रारंभ के तीन कांडों का हिंदी पद्यानुवाद है। अनुवाद में अधिकांशतः हरिगीतिका,

राम-रसायन

दोहा और चौपाई छंदों का प्रयोग किया गया है। अनुवाद साधारणतः भावात्मक हुआ है शब्दशः नहीं। उदाहरणार्थ नीचे ग्रंथ के प्रारंभिक अंश का मूल संस्कृत और उसका हिंदी अनुवाद दिया जाता है।

## मूल

तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनि पुंगवम् ॥ १ ॥
कोन्वास्मिन्सांप्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान।
धर्मज्ञश्चकृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः ॥ २ ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैक प्रिय दर्शनः ॥ ३ ॥
आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान्कोऽनुसूयकः।
कस्य विभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥ ४ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे।
महर्षेत्वं समर्थोसि ज्ञातुमेव विधं नरम् ॥ ५ ॥
श्रुत्वा चैत्र त्रिकालज्ञो वाल्मीकेर्नारदोवचः।
श्रूयतामितिचामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यम् मब्रीत ॥ ६ ॥

## अनुवाद

### दोहा

एक समय जप-तप-निरत, नारद सों यह बात;
बाल्मीकि पूछत भए, पुनि पुनि करि प्रनिपात।

### चौपाई

अव इह लोक पुरुष अस को है ; जो निज वल भरि अखिल विमोहै ।
वेद-विहित ध्रुव धरम-विधाता ; सत्य - सदन सरनागत - त्राता ।
तजहि न धर्म्म जु विपति परेहूँ ; जाहि न प्रिय पातक सपनेहूँ ।
जगत-जीव जीवन हितकारी ; पालक प्रजनि विमल व्रतधारी ।
आतम कौन अनातम को है ; याकौ तत्व विजानत जो है ।
गुन मंदिर सुंदर परवीनो ; चपल चित्त जिहिं निज वस कीनो ।
नर, किन्नर, सुर, असुर समेता ; काम, क्रोध, लोभादिक जेता ।
परगुन सुनत विदूषत नाहीं ; ताहिं कहहु जो अस जग माँहीं ।
हौ तुम तिहुँ लोकन कौ गामी ; सुचि सर्वज्ञ मुनिन के स्वामी ।
मम उर अमित सुनन की इच्छा ; ताते यहहि सु दीजै भिच्छा ।

### दोहा

या विधि बूझि सु चुप रहे, बालमीकि मुनि-राइ ;
नारद मुनि तिन सौं तवहि, बोले हिय हरपाइ ।

इत्यादि ।

इस अनुवाद की भाषा अत्यंत शिथिल हुई है । भरती के शब्दों की भरमार होने के कारण शब्द-संगठन सर्वथा निर्बल पड़ गया है । इसी से कुछ लोगों का अनुमान है, कि यह ग्रंथ ही पद्माकर का नहीं है । यह उनके नाम पर किसी अन्य व्यक्ति की रचना है । बहुत संभव है, कि यह बात सही हो, पर ऐसा करने से उसके वास्तविक रचयिता का क्या लाभ है, यह समझने में हम असमर्थ हैं । हमारा निजी अनुमान तो यह है, कि राम-रसायन पद्माकर की

प्रारंभिक रचना है और इसी कारण उसमें भाषा तथा भावगत शिथिलता पाई जाती है।

प्रबोध-पचासा पद्माकर जी के ज्ञान-वैराग्य तथा भक्ति विषयक इक्यावन कवित्तों का संग्रह है। इसके अधिकांश छंद बहुत ही मर्मस्पर्शी हुए हैं। उनकी एक एक पंक्ति में कवि की अनुभव-वाणी सन्निहित है। यथा:—

प्रबोध-पचासा

> व्याम बस डोलत सु याको बिसराम कहा,
> मोह बस बोले मल-मांसहू को गोला है;
> कहै 'पद्माकर' छनभंगुर सरीर यह,
> पानी कैसो फेन जैसे फलक फफोला है।
> करम कसेरा पंच तत्वन थनेरा कर,
> ठौर ठौर जोला फेर ठौर ठौर पोला है;
> छोड़ हरनाम नहीं पैहै बिसराम अरे,
> निपट निकाम तन चामही को चोला है।

> आनंद के कंद जग ज्यावत जगत बृंद,
> दसरथ नंद के निबाहेई निबहिए;
> कहै 'पद्माकर' पवित्र पन पालिबे को,
> चौरे चक्रपानि के चरित्रन को चहिए।
> अवधबिहारी के बिनोदन में बीधि बीधि,
> गीधा गुह गीधे के गुनानुवाद गहिए;
> रैन दिन आठो जाम राम, राम, राम, राम,
> सीताराम, सीताराम, सीताराम कहिए।

गंगा-लहरी में छप्पन छंदों में गंगा की कीर्ति का वर्णन है। इसके छंद भी प्रबोध-पचासा के समान ही उत्कृष्ट हुए हैं किंतु इसमें भावों की पुनरावृत्ति बहुत पाई जाती है जो पद्माकर जैसे बहुज्ञ और रससिद्ध कवि की कीर्ति के अनुरूप नहीं कही जा सकती। फिर भी यह छोटी सी पुस्तिका गंगा के भक्तों का कंठहार है।

गंगा-लहरी

कूरम पै कोल, कोलहू पै सेस कुंडली है,
कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की;
कहै 'पदमाकर' त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति रजत पहार की।
रजत पहार पर संभु सुर-नायक हैं,
संभु पर ज्योति जटा जूट हू अपार की;
संभु-जटा-जूट पर चंद की छुटी है छटा,
चंद की छटान पै छटा है गंगधार की।

कलित कपूर में न कीरति कुमोदनी में,
कुंद में न कास में कपास में न कंद में;
कहै 'पदमाकर' न हंस में न हास हू में,
हिय में न हेरि हारी हीरन के बृंद में।
जेती छवि गंग की तरंगन में ताकियत,
तेती छवि छीर में न छीरधिके छंद में;
चैत में न चैत-चांदनी हू में चमेलिन में,
चंदन में है न चंदचूड़ में न चंद में।

जोग जप जज्ञ कर तीरथ किये को फल,
पाय चुक्यो पल में तृतापन को तै चुक्यो ;
कहै 'पदमाकर' सुसातहू समुद्र जुत,
रतन जटित पृथिवी को दान दै चुक्यो।
जाने विन जाने जाने राम को उचार्यो नाम,
सो तो परिनाम हित एते काम कै चुक्यो ;
तापन को खंड जम दंड हूँ को दंडभेद,
मारतंड मंडल अखंड पद लै चुक्यो।

वकसि वितुंड दिये झुंडन के झुंड रिपु,
मुंडन की मालिका दई ज्यों त्रिपुरारी को ;
कहै 'पदमाकर' करोरन को कोप दिए,
षोडस हूँ दीन्हें महादान अधिकारी को।
ग्राम दिए, धाम दिए, अमित अराम दिए,
अन्न जल दीन्हें जगती के जीवधारी को ;
दाता जयसिंह दोय वातैं तौ न दीन्हो कहूँ,
बैरिन को पीठ और डीठ परनारी को।

हितोपदेश का कोई अंश हमें देखने को न मिल सका।

# ४

## काव्य-साधना

पद्माकर के समय की स्थिति के संबंध में, पहले जो कुछ कहा गया है, उससे स्पष्ट है, कि उनका समय किसी महाकवि के आविर्भाव के योग्य न था। महाकवियों का आविर्भाव भी हो चुका था और महाकाव्यों की सृष्टि भी। अब आवश्यकता थी काव्य के रीति-ग्रंथों की। रीति-काल में काव्य-रीति संबंधी ग्रंथों की ही सृष्टि हुई। रीति संबंधी ग्रंथों का महत्व काव्य-रीति के विचार से ही हो सकता है, स्वयं काव्य के विचार से नहीं। रीति के साथ ही साथ यदि उत्कृष्ट काव्य का भी दर्शन मिले, तो उसे

कवि की विशेष शक्ति का ही परिचय समझना चाहिए। पुनः रीति-ग्रंथों का विषय काव्य-कला है। अतएव, उनमें काव्य-कला के उत्कृष्ट स्वरूप का दर्शन मिलना सर्वथा स्वाभाविक है। किंतु उनमें उत्कृष्ट भाव का भी मिलना कोई आवश्यक नहीं है। इसीसे रीति कालीन काव्यों में कला का जितना उत्कृष्ट प्रदर्शन मिलता है, उतना भावों का नहीं। रीति-काल की कविता भी रीति ग्रस्त थी। उसके विषय, भाव और उनको प्रकट करने के उपकरण प्रायः परिमित थे। किसी वीर अथवा नृपति के कुछ गुणों का अतिशयोक्तियों में वर्णन, षड्ऋतु-भेद-कथन, नायिकाओं के भेद एवं उनकी अवस्थाओं का वर्णन, नख-शिख उल्लेख आदि कुछ बंधे हुए काव्य के विषय थे। इन विषयों के वर्णन करने की भाषा छंद, अलंकार यहाँ तक कि उपमाएँ भी सर्वथा सीमित थीं। इस परिमित सीमा का उल्लंघन करना उस समय के कवियों के लिए मानों असंभव था। ऐसे समय में जन्म धारण कर यद्यपि पद्माकर ने राम-रसायन, गंगा-लहरी, हिम्मतबहादुर-विरुदावली, प्रबोध-पचासा आदि विविध विषयों के ग्रंथों की रचना की है, तथापि उन्हें अपने समय की परिपाटी का अपवाद नहीं कहा जा सकता। उनके समय में रीति-ग्रंथ का निर्माता और प्रधानतः नायिकाओं का वर्णनकर्ता ही महाकवि समझा जाता था। अतएव, पद्माकर ने भी अपने पूर्वजों के अधीन उन्हीं चुने चुनाए उपादानों एवं भावों को ग्रहण कर अपनी रचना की कूँची चलाई है। किंतु उनके रंग में इतनी चमक है, कि वह दूसरों की ओर से दृष्टि हटा कर बरबस

अपनी ओर आकृष्ट करता है। उनके भावाभिव्यंजन में इतनी मौलिकता है, कि वह सैकड़ों के बीच अपने स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा करता है। प्रकाण्डता एवं नूतनता की ओर उन्होंने उतना ध्यान नहीं दिया है, जितना सौंदर्यांकन की ओर। पद्माकर की गणना सौंदर्योपासक कवियों की श्रेणी में ही की जा सकती है। इस सौंदर्यमयी सृष्टि में रूप का चरमोत्कर्ष मनुष्यों में ही पाया जाता है। मनुष्य ही सौंदर्य का जनाम है—अंतिम विवर्तन है। मनुष्यों में भी रमणी-सौंदर्य अत्यंत प्रसिद्ध है एवं उसमें भी उसके हृदय का सौंदर्य अधिक प्रशंसनीय है। पद्माकर ने यद्यपि विविध विषय की नवरसमयी रचनाएँ की हैं, किंतु वे प्रसिद्ध हैं अपने रमणी-सौंदर्यांकन के लिए ही। रमणी-सौंदर्य के वाह्य रूप-राशि के उन्होंने अनेक चित्र अंकित किए हैं, जो एक से एक बढ़कर सुंदर एवं मनोरम हैं; उन्हें देखकर चित्त विस्मय-विमुग्ध हो जाता है। रमणी के मानस-सौंदर्य—उसके सुख-दुख, हर्ष-विषाद, मान-अपमान, ईर्ष्या-द्वेष, प्रेम-प्रतीति आदि को भी उन्होंने अपनी कुशल कल्पना से चित्रित करने की चेष्टा की है, पर उसमें उन्हें उतनी सफलता नहीं मिली, जितनी कि उसके वाह्य सौंदर्यांकन में। वे जिस समय किसी रमणी का चित्र उपस्थित करते हैं, उस समय उसके वाह्य सौंदर्य से ही इतनी चकाचौंध उत्पन्न कर देते हैं, कि उसके मानस-सौंदर्य की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिलता। और जब उनकी कविता की मोह-तंद्रा भंग होती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वर्ग से पतित होकर सहसा

कोई मर्त्य-लोक में आ गया। किंतु इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है, कि वे मानस-सौंदर्यांकन में सर्वथा असफल ही हुए हैं। अपने युग के ज्ञान एवं अनुभूति के अनुसार उन्हें उसमें भी यत्किंचित सफलता मिली ही है। उनकी प्रौढ़ कल्पना एवं कुशल कूंची ने जो चित्र प्रस्तुत किए हैं, वे यदि हिंदी-काव्य के नव-दस धुरंधर कलाकारों के प्रस्तुत चित्रों से बढ़कर नहीं हुए हैं, तो कम से कम उनसे होड़ लेने योग्य अवश्य ही हुए हैं। इस कथन की परीक्षा अन्य कवियों के तद्विषयक सम काव्य-चित्रों के द्वारा अच्छी तरह हो सकती है। यद्यपि यह कहा जाता है, कि कवि की प्रतिभा युग एवं परिस्थिति का अतिक्रमण करती है, किंतु यह केवल कहने की बात है; वास्तव में युग एवं परिस्थिति के अनुकूल ही कवि की प्रतिभा जागरित होती है। युगानुकूल ही पद्माकर को अपनी रचना में सफलता मिली है। पद्माकर को महाकवियों की श्रेणी में तो बैठाया ही नहीं जा सकता; उनका जो कुछ भी महत्व है, वह केवल इसी दृष्टि से है, कि वे काव्य की एक नवीन शैली के स्कूल के अधिष्टाता एवं आचार्य थे। उनकी शैली को उनके परवर्ती कवियों ने बड़ी तल्लीनता से अपनाया है। अब भी व्रज-भाषा के काव्य में उन्हीं की शैली का अनुकरण किया जाता है। व्रजभाषा के अंतिम पंडित एवं सुकवि स्वर्गीय 'रत्नाकर' जी पद्माकरी शैली के ही प्रतिनिधि कहे जाते हैं। पद्माकर को सबसे अधिक सफलता शृंगार रस के काव्य में मिली, इसके बाद भक्ति और फिर वीर।

काव्य की सुंदरता में कोई अंतर नहीं आया है, वरन् उसका उत्कर्ष ही हुआ है। नाद-साम्य एवं अनुप्रासों की रक्षा के विचार से ही पद्माकर ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं नाद-साम्य की रक्षा में उन्होंने शब्दों का रूप विकृत कर दिया है। यद्यपि कवियों को भाषा-स्वातंत्र्य प्राप्त है तथा उसके अनुसार वे वैसा कर भी सकते हैं, परंतु अनेक विद्वानों के मत से वे इस स्वातंत्र्य का भी कहीं-कहीं उल्लंघन कर गए हैं; यथासमय का समंत, दावात का दौत, चित्रगुप्त का चित्र औ गुपित्र, मज़ाक का मजाखैं, रंगामेज़ी का रंगन अमेजैं, चातुरी का चातुरई, माधुरी का माधुरई आदि। कवि ऐसी स्वतंत्रता का उपभोग सुप्राचीन काल से करते चले आ रहे हैं तथा केशव जैसे आचार्य ने भी आरण्यानी को 'आनी' जैसा विकृत रूप दे डाला है फिर भी यथा शक्ति शब्दों को विकृत करना दोष ही माना जायगा। पद्माकर की भाषा में कहीं-कहीं अशुद्ध मुहाविरों का प्रयोग भी देखा जाता है; जैसे—'गोरी गरवीली तेरे गात की गुराई आगे चपला की निकाई अति लागत सहल सी', 'मोहि झकझोर डारी कंचुकी मरोर डारी तोरि डारी कसनि बिथोरि डारी बेनी त्यों', पहले में चपला की निकाई अशुद्ध प्रयोग है; चपला की चमक होती है; यद्यपि हिंदी के अनेक कवियों ने गात की गुराई की उपमा चपला की चमक से दी है, पर मेरे विचार से ऐसा करना अनुपयुक्त है। कारण, गोराई में जो स्निग्धता है वह चपला की चमक में कहाँ मिल सकती है। दूसरे में 'कंचुकी मरोर डारी' ठीक प्रयोग नहीं है; कंचुकी मसली जाती

सजि ब्रजबाल नंदलाल सो मिलै के लिए,
लगनि लगा लगि में लमकि-लमकि उठै ;
कहै 'पदमाकर' चिराग ऐसी चाँदनी सी,
चारयो ओर चौकनि में चमकि-चमकि उठै ।
झुकि-झुकि झूमि झूमि झिल-झिल झेल-झेल,
झरहरी झापन में झमकि-झमकि उठै ;
दर-दर देखौ दरीखानन में दौरि-दौरि,
दुरि-दुरि दामिनी सी दमकि-दमकि उठै ।

फूलन के खंभा बनी पटरी सुफूलन की—
फूलन के फँदना फँदे है लाल डोरे मैं ;
कहै 'पदमाकर' बितान तने फूलन के—
फूलन की झालर हूँ झूलती झकोरे मैं ।
फूल भरी फूलन सुफूल फूलवारी तहाँ,
फूलन के फरस बिछे है कुंज कोरे मैं ;
फूल जरी, फूल भरी, फूल झरी फूलन में,
फूलही सी फूल रही फूल के हिंडोरे मैं ॥

इन छंदों में यह कहना तो सर्वथा अनुचित होगा कि तत्व कुछ भी नहीं हैं, पर यह स्पष्ट है कि अनुप्रास और यमक की रक्षा के लिए अनावश्यक शब्दों का उहा-पोह है । शब्दों की सजावट में जितनी कारीगरी दिखाई गई है—भाव एवं कल्पना को उन्नत-बनाने में उतनी नहीं । जहाँ भाँवों का अभाव होता है, वहाँ शब्दों की करामात दिखाकर ही कवि अपनी कला को प्रदर्शित करता है ।

अपने शुद्ध रूप में न लिखे जाकर कृत्रिम रूप में लिखे गए हैं। यह भाषा का अस्वाभाविक प्रयोग है। किंतु ऐसे प्रयोग वीर, रौद्र एवं भयानक रस के काव्यों में हिंदी में प्रायः सर्वत्र देखने में आते हैं। अब एक परुषावृत्ति के स्वाभाविक स्वरूप का उदाहरण देखिए—

वारि टारि डारौं कुंभकर्णहि बिदारि डारौं,
मारौं मेघनादैं आज यों बल अनंत हौं;
कहै 'पदमाकर' त्रिकूटहू को ढाहि डारौं,
डारत करेई जातुधानन को अंत हौं।
अच्छहिं निरच्छि कपि रुच्छ ह्वै उचारौं इमि,
तोसे तिच्छ तुच्छन को कछुवै न गंत हौं;
जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपबन,
फारि डारौं रावण को तो मैं हनुमंत हौं।

पद्माकर की भाषा में कवीर अथवा ब्राउनिंग (Browning) की भाषा का वेसुरापन नहीं है। ब्राउनिंग ने भाषा की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जितना भाव की ओर। उनकी भाषा स्थल-स्थल पर कठोर तथा कृत्रिम सी हो गई है, फिर भी कहीं-कहीं भाव की अनुगामिनी हुई है। पाश्चात्य कवियों में टेनिसन (Tennyson) की भाषा बहुत सुंदर मानी जाती है। उनकी भाषा को हम अपने यहाँ के तुलसीदास की भाषा के समान कह सकते हैं। अंगरेजी के कवियों में बायरन (Byron) शेली वर्ड्सवर्थ (Words-worth) और कीट्स (Keats) की भाषा भाव की अनुरूपिणी

हुई है। जिसमें वर्ड्सवर्थ को भाषा बहुत ही स्वाभाविक मानी जाती है। पद्माकर की भाषा की समता मतिराम या रसखान की भाषा से ही हो सकती है। अंगरेजी साहित्य में जो स्थान (Wordsworth) की भाषा का है, हिंदी में वही स्थान पद्माकर की भाषा को दिया जा सकता है। पद्माकर की भाषा भाव की अनुरूपिणी हुई है। यद्यपि हम उसमें उन्हें सर्वथा सफल नहीं मान सकते, किंतु वे असफल भी नहीं कहे जा सकते। उनकी भाषा की लोकप्रियता के तीन प्रधान कारण हैं। एक तत्कालीन प्रचलित शब्दों का छोटे वाक्यों में प्रयोग, दूसरे उपयुक्त छंदों का चुनाव, तीसरे अलंकारों का उचित उपयोग। उनकी भाषा में ढूढ़ने पर भी निश्रित वाक्य (Complex sentence) का कोई उदाहरण नहीं मिलता। अमिश्रित (Simple) वाक्यों के प्रयोग एवं सहज बोधगम्य शब्दों के व्यवहार के कारण उनकी भाषा में जटिलता नहीं आने पाई है। वह स्वच्छ सरल और सर्वजन उपभोग्य हुई है। उनके छंदों का चुनाव भी विषय

छंद

अथवा भाव के अनुरूप हुआ है। छंदो की अनेक रूपता हिंदी के केशव तथा अंगरेजी के टेनिसन (Tannyson) तथा स्विन्बर्न (Swinburne) के काव्यों में ही अधिक देखी जाती है। किंतु पाश्चात्य देशों में ही नहीं भारत में भी छंदों का बहुत अधिक महत्त्व नहीं माना गया है। अवश्य ही नृत्य का भाव प्रकट करने के लिए नाचते हुए छंद जैसे भूलना आदि का तथा युद्ध का भाव प्रकट करने के लिए शास्त्रों की झंकार के अनुरूप

अपने शुद्ध रूप में न लिखे जाकर कृत्रिम रूप में लिखे गए हैं। यह भाषा का अस्वाभाविक प्रयोग है। किंतु ऐसे प्रयोग वीर, रौद्र एवं भयानक रस के काव्यों में हिंदी में प्रायः सर्वत्र देखने में आते हैं। अब एक परुषावृत्ति के स्वाभाविक स्वरूप का उदाहरण देखिए—

यारि टारि डारौं कुंभकर्णहि विदारि डारौं,
मारौं मेघनादैं आज यों वल अनंत हौं;
कहै 'पदमाकर' त्रिकूटहू को ढाहि डारौं,
डारत करेईं जातुधानन को अंत हौं।
अच्छहि निरच्छि कपि रुच्छ ह्वै उचारौं इमि,
तोसे तिच्छ तुच्छन को कछुवै न गंत हौं;
जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं रावण कौ तो मैं हनुमंत हौं।

हुई है। जिसमें वर्ड्सवर्थ की भाषा बहुत ही स्वाभाविक मानी जाती है। पद्माकर की भाषा की समता मतिराम या रसखान की भाषा से ही हो सकती है। अंगरेजी साहित्य में जो स्थान (Wordsworth) की भाषा का है, हिंदी में वही स्थान पद्माकर की भाषा को दिया जा सकता है। पद्माकर की भाषा भाव की अनुरूपिणी हुई है। यद्यपि हम उसमें उन्हें सर्वथा सफल नहीं मान सकते, किंतु वे असफल भी नहीं कहे जा सकते। उनकी भाषा की लोकप्रियता के तीन प्रधान कारण हैं। एक तत्कालीन प्रचलित शब्दों का छोटे वाक्यों में प्रयोग, दूसरे उपयुक्त छंदों का चुनाव, तीसरे अलंकारों का उचित उपयोग। उनकी भाषा में ढूंढ़ने पर भी मिश्रित वाक्य (Complex sentence) का कोई उदाहरण नहीं मिलता। अमिश्रित (Simple) वाक्यों के प्रयोग एवं सहज बोधगम्य शब्दों के व्यवहार के कारण उनकी भाषा में जटिलता नहीं आने पाई है। वह स्वच्छ सरल और सर्वजन उपभोग्य हुई है। उनके छंदों का चुनाव भी विषय

छंद

अथवा भाव के अनुरूप हुआ है। छंदों की अनेकरूपता हिंदी के केशव तथा अंगरेजी के टेनिसन (Tannyson) तथा स्विनर्न (Swinburne) के काव्यों में ही अधिक देखी जाती है। किंतु पाश्चात्य देशों में ही नहीं भारत मे भी छंदों का बहुत अधिक महत्व नहीं माना गया है। अवश्य ही नृत्य का भाव प्रकट करने के लिए नाचते हुए छंद जैसे झूलना आदि का तथा युद्ध का भाव प्रकट करने के लिए शास्त्रों की झंकार के अनुरूप

ध्वनित होने वाले छंद जैसे चंचला, पंचचामर, कृपाण आदि का व्यवहार उपयुक्त कहा जा सकता है। इसी प्रकार भारतीय आचार्यों ने रसों के अनुकूल भी छंदों का विभाग किया है; जैसे करुणा के लिए मालिनी, शृंगार के लिए बसंततिलका, शांत के लिए शिखरिणी, भयानक के लिए स्रग्धरा इत्यादि। परंतु शेक्सपियर (Shakespeare) जैसे महाकवि ने भी उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया है। उन्होंने एक अमित्राक्षर (Blank verse) में ही अपने संपूर्ण भाव-भंडार को प्रकट किया है। इसी प्रकार यद्यपि रसों के अनुकूल छंदों का विभाग भी हमारे यहाँ प्रस्तुत है पर प्रायः सभी छंदों में सभी रसों के काव्य पाए जाते हैं। पद्माकर-काल में कवित्त, सवैया तथा दोहा छंद ही अधिक प्रचलित थे। व्रजभाषा में शृंगार रसात्मक काव्य के लिए ये छंद कुछ अधिक उपयुक्त भी पड़ते हैं। इससे यद्यपि उन्होंने हिम्मतबहादुर-विरुदावली तथा राम-रसायन में प्रसंगानुसार विविध छंदों के व्यवहार की चेष्टा की है, तथापि शृंगार रसात्मक काव्य में उन्होंने कवित्त, सवैया तथा दोहा छंदों का ही प्रयोग है और वे उन छंदों के प्रयोग में कविवर मतिराम की भाँति सफल भी हुए हैं। उनका

**अलंकार**

अलंकारों का प्रयोग भी बहुत ही उपयुक्त तथा स्वाभाविक हुआ है। किसी अनाड़ी राज-कुलांगना के समान उनकी कविता-कामिनी न तो अलंकारों के बोझ से दबी ही हुई है और न किसी दीन ग्राम्य-बाला के समान निराभरणा ही है। नागरिक रमणियों के समान उसमें अल्प किंतु

सुंदर अलंकारों का उपयुक्त प्रयोग देखा जाता है, जिससे उनकी कविता का सौंदर्य यथेष्ट रूप में विकसित हुआ है। यद्यपि कभी-कभी अनुप्रास-प्रेम के वशीभूत होकर उन्होंने उसे अपनी कविता के कोमल कलेवर में बोझ रूप से लाद दिया है, जिसे देख कर क्लेश होता है। उनके इसी अनुप्रास-प्रेम की अतिशयता पर कुछ लोग (Dryden) ड्राइडेन के शब्दों में व्यंग करते हैं कि:—

One (verse) for sence and one for rhyme,
Is quite sufficient at a time.

अर्थात् एक पंक्ति-भाव के लिए तथा एक पंक्ति अनुप्रास के लिए लिखा है। किंतु पद्माकर के काव्य में ऐसे स्थल बहुत कम आए हैं, जहाँ पर उनका अनुप्रासों का प्रयोग अरुचिकर मात्रा में हुआ है। यों तो पद्माकर ने अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है पर अधिकतर उनका अनुप्रास, उपमा, लोकोक्ति एवं मुहाविरों का प्रयोग ही उत्तम हुआ है। जहाँ केवल वर्णों की अथवा स्वर-सहित वर्णों की समता हो (एक बार कथन किये हुए वर्णों का फिर कथन किया जाय) वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। इसे ही अंग्रेजी में (Alliteration) तथा (Rhyme) कहते हैं। इस अलंकार के उपयोग से काव्य में श्रुति-माधुर्य आता है। अनुप्रासों की वाहिनी पद्माकर के प्रत्येक छंद में दिखलाई पड़ती है। अस्तु, उसके संबंध में कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। अर्थालंकारों में उपमालंकार ही सर्वश्रेष्ठ है। इसे अर्थालंकार की आत्मा कहा जा सकता है। जिस प्रकार आत्मा शरीर के प्रत्येक

अंग में परिव्यास है, उसी भांति उपमालंकार भी अपने विविध परिवर्तित रूपों में संपूर्ण अर्थालंकारों में व्याप्त है। जहाँ उपमेय उपमान में भिन्नता रहते हुए भी समान धर्म बतलाया जाय, वहाँ उपमा अलंकार होता है। उपमेय से उस व्यक्ति या पदार्थ से तात्पर्य है जिसकी उपमा दी जाय और जिस पदार्थ से उपमा दी जाय उसे उपमान कहते हैं। अंगरेजी में इस अलंकार को ( Simile ) कहते हैं। इस अलंकार के द्वारा विषय अलंकृत, वर्णन उज्वल, सौंदर्य का एकत्रीकरण, मनोराज्य तथा बहिर्जगत का समन्वय एवं वक्तव्य स्पष्ट होता है—विषय बोधगम्य, सरल तथा प्रभावोत्पादक बन जाता है। इसके दो विभाग सरल ( Simple ) तथा मिश्र ( Complex ) माने जाते हैं। सरल में एक ही उपमा रहती है और मिश्र में अनेक। मूर्ति की भांति

अपेक्षा मिश्र उपमा को ही अधिक महत्व दिया है। मिश्र उपमा का स्वरूप भारतीय अलंकार-शास्त्र के अनुसार प्रायः रूपक, संसृष्टि, संकर आदि अलंकारों में मिलता है। पद्माकर ने यथा अवसर दोनों प्रकार की उपमा-प्रणाली का अनुसरण किया है।

चाँदनी के चौसर चहूँघा चौक चाँदनी में,
चाँदनी सी आई चंद चाँदनी चितै-चितै।

अनुप्रास की रक्षा के साथ ही साथ चाँदनी की उपमा द्वारा नायिका के निर्मल सौंदर्य-प्रकाश का प्रस्फुटन कितना उपयुक्त हुआ है!

मंद मंद हरषै अनंद ही के आँसुन कों,
बरसैं सुरैदैं मुकतान ही के दाने सी;
कहै 'पद्माकर' प्रपंची पंचवान के सु,
कानन के मान पै परी त्यों घोर घाने सी।
ताजी त्रिवलीन मैं विराजी छवि छाजी सबै,
राजी रोमराजी करि अमित उठाने सी;

इस छंद में मध्यमा नायिका के मान का वर्णन है। प्रथम तीन पंक्तियों में भाव को व्यक्त करने में उपमाओं द्वारा जो सहायता ली गई है वह तो स्पष्ट ही है, किंतु चौथी पंक्ति की भौहैं गई उतरि कमाने सी में कवि ने अच्छा चमत्कार उत्पन्न किया है। भौहों की कमान से उपमा प्रायः सभी कवियों ने दी है, किंतु जैसे स्थल पर और जिस ढंग से पद्माकर ने दिया है वह अपूर्व है।

पद्माकर ने कुछ नवीन उपमाओं का भी व्यवहार किया है जो उनकी निजी सूझ का परिणाम है और हिंदी-साहित्य की

अंग में परिव्याप्त है, उसी भांति उपमालंकार भी अपने विविध परिवर्तित रूपों में संपूर्ण अर्थालंकारों में व्याप्त है। जहां उपमेय उपमान में भिन्नता रहते हुए भी समान धर्म बतलाया जाय, वहाँ उपमा अलंकार होता है। उपमेय से उस व्यक्ति या पदार्थ से तात्पर्य है जिसकी उपमा दी जाय और जिस पदार्थ से उपमा दी जाय उसे उपमान कहते हैं। अंगरेजी में इस अलंकार को ( Simile ) कहते हैं। इस अलंकार के द्वारा विषय अलंकृत, वर्णन उज्वल, सौंदर्य का एकत्रीकरण, मनोराज्य तथा बहिर्जगत का समन्वय एवं वक्तव्य स्पष्ट होता है—विषय बोधगम्य, सरल तथा प्रभावोत्पादक बन जाता है। इसके दो विभाग सरल ( Simple ) तथा मिश्र ( Complex ) माने जाते हैं। सरल में एक ही उपमा रहती है और मिश्र में अनेक। मूर्ति की भांति शांत या नीरव (Silent like statue) यह सरल उपमा है। आपत्ति-सागर के विरुद्ध शस्त्र धारण करना ("To take arms against a sea of trouble"—Shakespeare) यह मिश्र उपमा है। इसमें पहले आपत्ति के साथ समुद्र की तुलना की गई है और तत्काल ही समुद्र के साथ सैन्य की तुलना की गई, फिर उसी सेना के विरुद्ध शस्त्र-धारण इतना अर्थ सन्निहित है। सरल की अपेक्षा मिश्र उपमाही श्रेष्ठ मानी जाती है।

उपमा का सौंदर्य उपमेय तथा उपमान के सांगोपांग मिलान में नहीं रह जाता। उनके मिलान का काम पाठकों की कल्पना पर ही छोड़ना अच्छा है। इसीसे श्रेष्ठ कवियों ने सरल उपमा की

अपनी संपत्ति है। इस स्थल पर ऐसी उपमाओं के भी दो-चार उदाहरण दिए जायँगे।

बैठी फिर पूतरी अनूतरी फिरंग कैसी,
पीठ दै प्रवीनी दृग दृगन मिलै अनिंद;
आछे अवलोकि रही आए रस मंदिर मैं,
इंदी वर सुंदर गोविंद को मुखारविंद।

यह कवित्त क्रियाविदग्धा नायिका के उदाहरण में दिया गया है। क्रियाचातुरी द्वारा परपुरुषानुराग संबंधी कार्य को संपादित करनेवाली नायिका को क्रियाविदग्धा कहते हैं। नायिका रस-मंदिर में बैठी हुई थी, जिसमें स्थल-स्थल पर दर्पण लगे हुए थे। नायक ने ज्योंहीं उस कक्ष में प्रवेश किया था, कि वहाँ पर चुगुलखोरियों का दल एकत्र हो गया। यह देख नायिका अपने अनुराग को छिपाने के विचार से नायक की ओर पीठ करके बैठ रही, जिससे वह सामने के दर्पण में नायक के इंदीवर सुंदर मुखारविंद का स्पष्ट दर्शन भी कर सकती थी और उसके प्रति उसकी उदासीनता भी प्रगट हुई। पद्माकर ने नायिका के इसी कार्य की उपमा फिरंगियों से दी है। फिरंगी का तात्पर्य है अंगरेज से। पद्माकर के काल में अंगरेजों का तथा उनकी भाषा का ऐसा प्रचार नहीं था जैसा आज दिन है। इससे वे अपने भावों को दूसरों पर भली-भाँति व्यक्त नहीं कर सकते थे, जिससे वे प्रायः अनुत्तर एवं उदासीन रहा करते थे। फिरंगियों के इसी गुण का आरोप उन्होंने उक्त उपमा द्वारा अपनी नायिका में किया है। कैसी अपूर्व सूझ है।

अपनी संपत्ति है। इस स्थल पर ऐसी उपमाओं के भी दो-चार उदाहरण दिए जायँगे।

बैठी फिर पूतरी अनूतरी फिरंग कैसी,
पीठ दै प्रवीनी दृग दृगन मिलै अनिंद ;
आछे अवलोकि रही आए रस मंदिर मैं,
इंदी वर सुंदर गोविंद को मुखारविंद।

यह कवित्त क्रियाविदग्धा नायिका के उदाहरण में दिया गया है। क्रियाचातुरी द्वारा परपुरुषानुराग संबंधी कार्य को संपादित करनेवाली नायिका को क्रियाविदग्धा कहते हैं। नायिका रस-मंदिर में बैठी हुई थी, जिसमें स्थल-स्थल पर दर्पण लगे हुए थे। नायक ने ज्योंहीं उस कक्ष में प्रवेश किया था, कि वहाँ पर चुगुलखोरियों का दल एकत्र हो गया। यह देख नायिका अपने अनुराग को छिपाने के विचार से नायक की ओर पीठ करके बैठ रही, जिससे वह सामने के दर्पण में नायक के इंदीवर सुंदर मुखारविंद का स्पष्ट दर्शन भी कर सकती थी और उसके प्रति उसकी उदासीनता भी प्रगट हुई। पद्माकर ने नायिका के इसी कार्य की उपमा फिरंगियों से दी है। फिरंगी का तात्पर्य है अंगरेज से। पद्माकर के काल में अंगरेजों का तथा उनकी भाषा का ऐसा प्रचार नहीं था जैसा आज दिन है। इससे वे अपने भावों को दूसरों पर भली-भाँति व्यक्त नहीं कर सकते थे, जिससे वे प्रायः अनुत्तर एवं उदासीन रहा करते थे। फिरंगियों के इसी गुण का आरोप उन्होंने उक्त उपमा द्वारा अपनी नायिका में किया है। कैसी अपूर्व सूझ है।

अपनी संपत्ति है। इस स्थल पर ऐसी उपमाओं के भी दो-चार उदाहरण दिए जायँगे।

बैठी फिर पूतरी अनूतरी फिरंग कैसी,
पीठ दै प्रवीनी दृग दृगन मिलैं अनिंद;
आछे अवलोकि रही आए रस मंदिर मैं,
इंदी वर सुंदर गोविंद को मुखारविंद।

यह कवित्त क्रियाविदग्धा नायिका के उदाहरण में दिया गया है। क्रियाचातुरी द्वारा परपुरुषानुराग संबंधी कार्य को संपादित करनेवाली नायिका को क्रियाविदग्धा कहते हैं। नायिका रस-मंदिर में बैठी हुई थी, जिसमें स्थल-स्थल पर दर्पण लगे हुए थे। नायक ने ज्योंहीं उस कक्ष में प्रवेश किया था, कि वहाँ पर चुगुलखोरियों का दल एकत्र हो गया। यह देख नायिका अपने अनुराग को छिपाने के विचार से नायक की ओर पीठ करके बैठ रही, जिससे वह सामने के दर्पण में नायक के इंदीवर सुंदर मुखारविंद का स्पष्ट दर्शन भी कर सकती थी और उसके प्रति उसकी उदासीनता भी प्रगट हुई। पद्माकर ने नायिका के इसी कार्य की उपमा फिरंगियों से दी है। फिरंगी का तात्पर्य है अंगरेज से। पद्माकर के काल में अंगरेजों का तथा उनकी भाषा का ऐसा प्रचार नहीं था जैसा आज दिन है। इससे वे अपने भावों को दूसरों पर भली-भाँति व्यक्त नहीं कर सकते थे, जिससे वे प्रायः अनुत्तर एवं उदासीन रहा करते थे। फिरंगियों के इसी गुण का आरोप उन्होंने उक्त उपमा द्वारा अपनी नायिका में किया है। कैसी अपूर्व सूझ है।

विहारी के दोहे में नायिका की व्याकुलता का वर्णन है और पद्माकर के दोहे में नेत्रों की व्याकुलता का। कुछ लोगों की दृष्टि में कला के विचार से संभव है बिहारी का दोहा श्रेष्ठ हो, पर पद्माकर के दोहे में समाज के प्रति जो प्रच्छिप्त व्यंग है, विहारी में उसका कहाँ पता !

"कोमल कंज मृनाल पर, किए कलानिधि वास ;
कवको ध्यान रही जु धरि, पिया मिलन की आस।"

पति-प्रतीक्षा-रता चिन्ता-मग्ना रमणी का यह एक उत्कृष्ट चित्र है। शब्द-योजना एवं भाव सभी काव्यमय हैं। जिस नारी-मूर्ति के निर्माण में जगन्नियंता ने अपनी संपूर्ण निपुणता व्यय कर दी, उसकी नियति की कुटिलता सर्वथा प्रतिकूल स्थिति की द्योतिका है। इसी से कवि ने भी उसके चित्रांकन में प्रतिकूल तत्त्वों का ही अवलंब लिया है। पृथ्वी पर कंज के आधार से वाहुमृणाल का स्थित होना और फिर उस पर सहज विरोधी अन्तरिक्षवासी कला-निधि-आनन, का वास एक दम अनहोनी घटना है। किंतु नायिका के अदृष्ट के समान उसका होना सर्वथा संभव है। ऐसे उत्कृष्ट काव्य-चित्र साहित्य में वहुत कम देखने में आते हैं। इस दोहे के पढ़ने पर हमें रोमियो ( Romeo ) का यह कथन स्मरण हो आया—

See ! how she leans her cheek upon her hand,
O ! that I were a glove upon that hand,
That I might touch that cheek.

—Shakespeare.

शेक्सपियर तथा पद्माकर दोनों ही ने अपनी अपनी-नायिकाओं को एक ही स्थिति का वर्णन किया है। अंतर इतना ही है, कि शेक्सपियर की कविता में रोमियो की हृदय-लालसा का अभिव्यंजन है तथा पद्माकर की कविता में स्वयं नायिका का चित्रांकन।

उपमा का एक भेद विपरीतोपमा है। इसी को प्रतीप भी कहते हैं। जहाँ उपमान को उपमेय कल्पित किया जाय वहाँ यह अलंकार होता है। पद्माकर ने इसका निर्वाह भी अच्छा किया है:—

साजि सैन भूषन बसन, सबकी नजर बचाइ;
रही पौढ़ि मिस नींद के, दृग दुवार से लाइ।

उपमा का एक दूसरा भेद रूपक भी है। इसमें आरोप्यमाण और आरोप विषय का स्पष्ट वर्णन होता है। इस अलंकार की सहायता से कवि जिस चित्र को अंकित करना चाहता है, वह बहुत ही स्पष्ट हो जाता है। पद्माकर ने इसका भी सफल प्रयोग किया है।

जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी;
त्यों 'पदमाकर' हीर के हारन गंग तरंगनि को सुख देनी।
पायन के रँग सो रँगि जाति सी भाँतिही भाँति सरस्वती सेनी;
पैरै जहाँई जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिबेनी।

त्रिवेणी का ऐसा अभेद रूपक भारतीय साहित्य में कदाचित ही कहीं मिले। भाषा कोमल होने के साथ ही इतनी सजीव है, कि ऐसा प्रतीत होता है, मानो नेत्रों के सामने ही कोई बालिका किसी

सरोवर में विहार कर रही है। पंत जी ने भी एक ऐसी ही वारि-परी का चित्र अंकित किया है।

> चला मीन दृग चारो ओर,
> गह-गह अंचल चंचल छोर,
> रुचिर रुपहरे पंख पसार,
> अरी वारि की परी किशोर,
>
> तुम जल थल में अनिलाकार,
> अपनी ही लघिमा पर वार।
> करती हो बहु रूप विहार।

पद्माकर एवं पंत दोनों ही के काव्य वाह्य-सौंदर्य के अपूर्व उदाहरण हैं। पद्माकर की बाला उन्नीसवीं शताब्दि की है और पंत की परी बीसवीं शताब्दि की। दोनों में केवल यही अंतर है।

> चौक में चौकी जराय जरी तिहि पै खरी बार बगारत सौंधे;
> छोरि धरी हरी कंचुकी न्हान को अंगन तें जगे जोति के कौंधे।
> छाई उजोरन की छवि यों 'पदमाकर' देखत ही चकचौंधे;
> भाजि गई लरिकाई मनों लरिकै करिकै दुहुँ दुंदुभि औंधे।

नवयौवना के उत्तुंग उरोजों के अनंत सौंदर्य से चमत्कृत पद्माकर को वे ऐसे प्रतीत हुए, मानो शैशव तथा यौवन के युद्ध में शैशव अवस्था पराजित होकर अपने हेम के विजय-नगाड़े औंधाकर भाग गई। उक्ति बड़ी ही अनूठी है, भाषा इतनी मार्जित

अब आँसुओं पर दो उत्प्रेक्षाएँ देखिए—

यों श्रम सीकर सुमुख तें परत कुचन पर बेस ;
वदित चंद्र मुकुता छतनि पूजत मनहुँ महेस।
आँखिन ते आँसू उमड़ि परत कुचन पर आन ;
जनु गिरीस के सीस पर, डारत भप मुकुतान।

इन अलंकारों के अतिरिक्त पद्माकर की भाषा को आकर्षक बनाने में कुछ ऐसे वाक्य अथवा वाक्यांश भी सहायक हुए हैं, जो लोकोक्ति, कहावत अथवा महाविरों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं या हो सकते हैं। नीचे उनके काव्य से कुछ ऐसे वाक्य एवं वाक्यांशों के उदाहरण दिए जाते हैं:—

(१) एक दिना नहिं एक दिना कबहू फिरि वे दिन फेर फिरैंगे।
(२) जो बिधि भाल में लीक लिखी सो बढ़ाई बढ़ै न घटै न घटाई।
(३) दोष बसंत को दीजै कहा उलहै न करील के डारन पाती।
(४) चाहे सुमेरु को राई करै रचि राई को चाहे सुमेरु बनावै।
(५) साँचहु ताको न होत भलो जो न मानत है कही चार जने की।
(६) पेट के बेट बेगारहि मैं जब लौं जियना तब लौं सियना है।
(७) आपने हाथ सों आपने पाँय पै पाथर पारि पस्यो पछताने।
(८) भूलहू चूक परै जो कहूँ तिहि चूक की हूक न जात हिये तें।
(९) कैसी भई तुम्हैं गंग की गैल मैं गीत मँदारन के लगे गावन।
(१०) बात के लागे नहीं ठहरात है ज्यों जलजात के पात पै पानी।
(११) हा तो न लोटती लोभ लपेट मैं पेट की जो पै चपेट न होती।
(१२) प्रीति-पयोनिधि में धँसि कै हँसि कै कढ़िबो हँसि खेल नहीं फिर।

पाती लिखी सुमुखि सुजान पिय गोविंद को,
सोजुत सलोने स्याम सुखनि सने रहौ;
कहै 'पदमाकर' तिहारी छेम छिन-छिन,
चहियतु प्यारे मन मुदित घने रहौ।
विनती इती है कै हमेस हूँ हमें तौ निज,
पायन की पूरी परिचारिका गने रहौ;
याही में मगन मन मोहन हमारो मन,
लगनि लगाय लाल मगन बने रहौ।

भाषा एवं भाव दोनों ही कितने सहज एवं सरल रूप में अंकित हुए हैं। छोटे सरल वाक्यों में एक सती की हृदय-कामना जैसे प्रत्यक्ष बोल रही है। सती का हृदय-सौंदर्य जितना ही सात्विक है आडंबरहीन मधुर शब्दों का चुनाव भी उतना ही उत्कृष्ट हुआ है।

बछरै खरी प्यावै गऊ तिहि को 'पदमाकर' को मन लावतु है ?
तिय जानि गरैया गही बनमाल सु ऐंच्यों लला इँच्यों आवतु है।
उलटी करि दोहिनी मोहिनी की अँगुरी थन जानि दबावतु है;
दुहिबो औ' दुहाइबो दोउन को सखि ! देखत ही बनि आवतु है।

मानस-सौंदर्य का कितना सुंदर चित्र है ! प्रेमाधिक्य में कितनी तन्मयता है ! विभ्रम हाव का ऐसा सजीव एवं स्वभाविक चित्र हिंदी-साहित्य में बहुत कम देखने को मिलेगा। ऐसा प्रतीत होता है, मानों नेत्रों के सम्मुख ही यह घटना घट रही है। इसी में तो भाषा की सार्थकता है। उपनागरिका वृत्ति का प्रयोग शृंगार रस के अनुकूल

तीर पर तरनि तनूजा के तमाल तरे—
लीज की तयारी ताकि आई तकियान में ;
कहै 'पदमाकर' सु उमँगि-उमँगि उठै—
मेंहदी सुरंग की तरंग अँखियान में ।
स्याम रंग बोरी गोरी नवल किसोरी तहाँ,
झूलती हिंडोरे यों सुहाई सखियान में ;
काम झूलै उर में उरोजनि में दाम झूलै,
स्याम झूलैं प्यारी की अन्यारी अँखियान में ।

स्वेद को भेद न कोऊ कहै व्रत आँखिन हूँ अँसुवान को धारो ;
त्यों 'पदमाकर' देखती ही तन कौ तन कंप न जात सँभारो ।
है धौं कहा को कहा गयो यों दिन द्वैकहि तै कछु ख्याल हमारो ;
कानन में बसी बाँसुरी की धुनि प्रानन में बसो बाँसुरीवारो ।

ये वृषभानु किसोरी भईं इतै ह्वाँ वह नंद किसोर कहावैं ;
त्यों 'पदमाकर' दोउन पै नवरंग तरंग अनंग की छावै ।
दौरे दुहूँ दुरि देखिबे को दुति देह दुहूँ की दुहूँन को भावै ;
यों इनके रस भीजे चढ़े दृग ह्वाँ उनके मसि भींजत आवै ।

मंडप ही में फिरे मँडरात न जात कहूँ तजि नेह को औनो ;
त्यों 'पदमाकर' तोहि सराहत बात कहै जु कछू कहौ कौनो ।
ए बड़भागिनि तो सी तुही चलि जो लखि रावरो रूप सलौनो ;
ब्याह ही ते भए कान्ह लट्टू तब हूँ है कहा जब होहिगो गौनो ।

जबलौं घर को धनि आवै घरै तबलौं तो कहूँ चित दैबो करौ ;
'पद्माकर' ये बछरा अपने बछरान के संग चरैबो करौ ।

प्रतीत होती है। उनकी भाषा सरल, तरल, सरस एवं मधुर हुई है। अलंकारों के उपयुक्त मिश्रण से उसमें जो सजीवता आ गई है, वह अपूर्व है। किसी भाषा की कविता का आनंद तभी मिलता है, जब उस भाषा का प्रौढ़ ज्ञान प्राप्त हो जाता है, पर पद्माकर की भाषा में उसके नाद-सौंदर्य एवं सारल्य के कारण भाषा के प्रारंभिक विद्यार्थियों को भी यथेष्ट आनंद मिलता है। पद्माकर के काव्य में सुंदर भाषा के साथ सुंदर भावों का मिश्रण बहुत ही मनोमुग्धकर हुआ है। उनकी शैली में न तो चंद की रुक्षता है और न केशव की क्लिष्टता। उनकी भाषा, भाव एवं शैली बहुत ही मधुर एवं प्रभावोत्पादक है। वह मक्खन, मिश्री एवं मधुमिश्रित लड्डू के समान है; जो मुख में रखते ही कंठ के नीचे उतर जाता है और मन तथा प्राण को संतुष्ट एवं शीतल कर देता है। उनकी भाव-व्यंजना मन को बरबस मुग्ध कर लेती है। भाषा तथा शैली का सबसे बड़ा गुण यही है, कि वह जिस चित्र को अंकित करना

ओर अधिक ध्यान दिया जायगा वहाँ भावों का नैसर्गिक प्रवाह अवश्य भंग होगा और भापा में अवश्य तोड़-मरोड़ करनी पड़ेगी। संतोप की वात इतनी ही है, कि उनके छंदों में उनकी भाव-धारा को स्वच्छ सरल प्रवाह मिला है, जिनमें हावों की सुंदर योजना के वीच में सुंदर चित्र खड़े किए गए हैं।........मुक्तक रच-नाओं में पद्माकर ने अच्छा चमत्कार प्रदर्शित किया है। आधु-निक हिंदी के कुछ कवियों तथा समीक्षकों की दृष्टि में पद्माकर रीति-काल के सर्वोत्कृष्ट कवि ठहरते हैं।...............इनकी भापा का प्रवाह वड़ा ही सुंदर और चमत्कार युक्त है।" व्रज-भापा के कवियों में पद्माकर के उच्च-स्थान पाने का अधिकांश श्रेय उनकी सुंदर सानुप्रसिक भाषा को ही है। सुंदर भापा के जितने भी गुण माने गए है प्रायः वे सभी पद्माकर की भापा में पाए जाते हैं। रीतिकालीन कवियों में भापा-सौष्ठव के विचार से पद्माकर का स्थान प्रथम श्रेणी में ही माना जायगा।

पद्माकर की प्रतिभा ने अपनी काव्य-धाग को त्रिमुखी प्रवाहित किया है। उनकी हिम्मतवहादुर-विरुदावली में वीरगाथा-काल की स्मृति पाई जाती है। उनके रामरसायन, प्रबोध-पचासा, तथा गंगा-लहरी में भक्ति-काल का दर्शन मिलता है एवं उनके पद्माभरण तथा जगद्विनोद से रीति-काल का ज्ञान होता है। इस प्रकार पद्माकर के काव्य में हिंदी-साहित्य के इतिहास के तीनों कालों की काव्य-प्रवृत्ति का समन्वय पाया जाता है। जो काल जितने ही पहिले का है, पद्माकर को

भाव-वैभव

तत्कालीन काव्य-प्रवृत्ति की रक्षा में उतनी ही कम सफलता मिली है। वीर-काव्य की अपेक्षा उनका भक्ति-काव्य उत्तम हुआ है और भक्ति-काव्य की अपेक्षा उनका शृंगार-काव्य उत्तम हुआ है। शृंगार-काव्य लोक-रुचि के अनुकूल भी होता है। इसी से उनका शृंगार-काव्य जितना प्रसिद्ध है, अन्य काव्य नहीं। अपनी प्रसिद्धि के अनुकूल ही वे संसार में शृंगारी कवि के रूप में ही अधिकतर परिचित हैं।

पद्माकर की कल्पना का विहार-क्षेत्र अथवा उनके भाव-राज्य का विस्तार बहुत व्यापक नहीं कहा जा सकता। वाल्मीकि अथवा सूर के कल्पनाकाश के समान न तो उनके काव्य में अनुभूति-विस्तार ही पाया जाता है और न ब्राउनिंग (Browning) या शेली (Shelley) अथवा कबीर के भावसागर का गांभीर्य ही। उनकी कविता न तो आदर्शवादी भवभूति अथवा तुलसी की पुण्य देवभावना से ही ओतप्रोत है और न यथार्थवादी शेक्सपियर (Shakespear) अथवा बाइरेन के संसार की नरकाग्नि का ही चित्रण करती है। उनके भाव वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) की भावभूति के समान ही परिसीमित हैं। वर्ड्सवर्थ अधिकतर प्रकृति के जड़ सौंदर्य के चित्रण में संलग्न था और पद्माकर नर-नारियों के सौंदर्यकी उपासना में रत। दोनों कवियों की कल्पना नंदन-कानन के जितने अंश में क्रीड़ा करती है, वह उतने में ही यथेष्ट सुंदर रूप विकसित हुई है। उनकी कल्पना यद्यपि कृशावदना है, किंतु सौंदर्य तथा मादकता से इतना परिपूर्ण

है, कि वह अपने प्रेमियों के मन के साथ तादात्म्य स्थापित कर उन्हें तन्मय बना देती है। पद्माकर की कविता के स्वर्ण-संसार में पहुँच कर मनुष्य कुछ काल के लिये अपने अस्तित्व से बेसुध हो जाता है। संसार की नरकाग्नि तथा जीवन की जटिलताएँ उसे विस्मृत-सी हो जाती हैं और वह एक ऐसे स्वप्नलोक में पहुँचता है, जहाँ प्रेम का साम्राज्य है, प्रेम के ही वशीभूत होकर आकाश अपनी निर्मल-नीलिमा प्रदर्शित करता है, चंद्र अपनी धवल किरणें विकीर्ण करता है, अरुण रागरंजित मुसकान भरता है, वायु मृदु गुदगुदी से शरीर को पुलकित करता है और फूल-पत्ते अपने बहुरंगी रूप से चित्त को आकर्षित करते हैं। वहाँ के नर-नारी प्रेम के ही जीवन से जीवित रहते हैं और प्रेम की ही मृत्यु से मृत। वे प्रेम के ही आनंद से आनंदित रहते हैं और प्रेम की ही पीड़ा से पीड़ित। उनकी प्रेमपुरी की नायक-नायिकाएँ कहने को तो इसी संसार की साधारण गोप-गोपिकाएँ हैं, पर वे हैं, राजकुलांगनाओं से भी अधिक सुखी एवं समृद्धिशाली, स्वर्ग की अप्सराओं से भी अधिक रूपसी एवं शोभन और देव-बालाओं से भी अधिक सुंदर तथा सुकुमार हृदयवाली। वे बड़े-बड़े राज-प्रासादों में रहती हैं, बाग-बगीचों में घूमती हैं, जहाँ विलास की सभी सामग्री प्रस्तुत रहते हैं, उन्हीं के बीच वे हीरे जवाहिरातों के आभूषणों से सज्जित तथा सुगंधवासित अत्यंत बारीक वस्त्र धारण किए, जिसमें से उनके अंग-अंग का सौंदर्य परिलक्षित होता है—अपनी प्रेम क्रीड़ा में मस्त रहती हैं—इहलोक अथवा

परलोक से उनका कोई संपर्क नहीं। उनके इन नायक-नायिकाओं के सुख-दुख की गाथा सुनते-सुनते मन-मोहित हो जाता है—प्राण-तंद्राभिभूत हो जाता है। उनकी कविता के जादू का अवसान होने पर, मनुष्य को अपनी प्रकृतिस्थ अवस्था में आने पर एक मीठी ठेस लगती है तथा कोई बहुत ही अच्छा स्वप्न देखते-देखते सहसा नींद टूट जाने पर जैसा अवसाद प्रतीत होता है, और पुनः आँख बंद कर उसी स्वप्न लोक में विचरण करने की इच्छा होती है—ठीक उसी अवस्था का वह भी अनुभव करता है। जो उनके एक छंद को सुन लेता है, वह उनके दूसरे छंद के सुनने का अभिलाषी होता है—जो उनका एक चित्र देख लेता है वह उनके दूसरे चित्र को देखने की इच्छा रखता है। इसी में पद्माकर के काव्य की संपूर्ण सार्थकता है। पद्माकर के काव्य में लाँगफेलो (Longfellow) मतिराम अथवा रसखान की सरलता; बाइरेन (Byrone) विद्यापति अथवा देव की ऐंद्रियता (Sensation) तथा जयदेव, दास अथवा तोप की भावानुभूति (Passion) पायी जाती है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि पद्माकर सौंदर्य के कवि हैं। अपनी सौंदर्यानुभूति को व्यक्त करनाही उनकी कव्य-साधना का चरम लक्ष्य है। अपने इस लक्ष्य की पूर्ति में वे कहाँ तक सफल हुए हैं, अब इसी तथ्य की समीक्षा की जायगी।

नारी-सौंदर्य के अंकन में संसार के प्रायः सभी श्रेष्ठ कवियों ने अपनी प्रतिभा का कौशल दिखलाया है। संस्कृत तथा हिंदी के

कवियों ने उसके नख-शिख के शृंगार में अपनी जितनी शक्ति व्यय की है, संसार की किसी भी भाषा में संभवतः उसका दूसरा उदाहरण नहीं मिलेगा। नारी-सौंदर्यानुभूति का जैसा पवित्र और उत्कृष्ट रूप गोस्वामी तुलसीदास जी के काव्यामृत द्वारा संजीवित हुआ है, कदाचित उसे अन्यत्र पाना कठिन होगा। गोस्वामी तुलसीदास जी का सीता-सौंदर्य-वर्णन देखिए—

गिरा मुखर तन अरध भवानी।
रति अति दुखित अतनु पति जानी।
बिष बारुणी बन्धु प्रिय जेही।
कहिय रमा सम किमि बैदेही।
जो छवि सुधा पयोनिधि होई।
परम रूप मय कच्छप सोई।
सोभा रजु मंदर सिंगारू।
मथइ पानि पंकजनिज मारू।
एहि विधि उपजइ लच्छि जब, सुंदरता सुख मूल;
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय सम तूल।

जगज्जननी सीता के जिस अलौकिक रूप का अंकन गो० तुलसीदास जी ने किया है क्या वह सहज इंद्रिय-ग्राह्य है? क्या उसका अनुभव संसार के साधारण प्राणी कर सकते हैं? कदापि नहीं। उसके लिये तो गोस्वामी जी से समान ही अनुभूति एवं कल्पना की आवश्यकता है। सौंदर्य की ऐसी कल्पना जिसका छूना भी हमारे लिए कठिन है संसार के सभी कवियों में नहीं

पाई जा सकती। कल्पनातीत की कल्पना कोई रहस्य पारदर्शी कवि ही कर सकता है। अब सूरदास के सौंदर्य चित्र को देखिए—

वृषभानु-नंदिनी अति छबि बनी;
स्री वृन्दावन चंद राधा निर्मल चाँदनी।
स्याम अलक बिच मोती दुति मंगा;
मनहुँ झलमलित सीस-गंगा।
स्रवण ताटंक सोहै चिकुर की काँति;
उलटि चल्यो है राहु चक्र की भाँति।
गोरे लिलाट सोहै सेंदुर को विंद;
ससि को उपमा देत कवि क्यो है निंद।
चपल उनींदे नैन लागत सोहाए;
नासिका चंपकली को ह्वै अलि धाए।

तुलसीदास की सौंदर्यानुभूति में आध्यात्मिकता का पूर्ण विकास है और सूरदास की सौंदर्यानुभूति में आध्यात्मिकता तथा भौतिकता का सम-सम्मिश्रण। तुलसीदास के काव्य में सौंदर्य का शारदेंदु विकसित हुआ है, जिसके शीतल प्रकाश से मन स्निग्ध हो जाता है और सूरदास की उपमा-बहुल रचनाओं में विद्युत की तड़प है जो तृप्ति की स्थान पर पिपासा को ही जागरित करती है। उनके काव्य में तारों की झलमलाहट के समान आनंद की झलमलाहट ही अधिक मात्रा में पाई जाती है, उसका सम्यक प्रकाश नहीं। इसी स्थान पर विद्यापति का नख-शिख भी देख लीजिए—

कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल,
　　　　　　　　ता अरुझायल हारा ;
जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल,
　　　　　　　　चाँद विहिन सब तारा ।

चाँद सार लए मुख घटना कए,
　　　　　　　　लोचन चकित चकोरे ;
अमिय धोय आँचर धनि पोछलि,
　　　　　　　　दह दिसि भेल उँजोरे ।

नाभि - विवर सयं लोम - लतावलि,
　　　　　　　　भुजगि निसास पियासा ;
नासा खगपति चंचु भरम भय,
　　　　　　　　कुचगिरि संधि निवासा ।

विद्यापति के काव्य में भौतिकता की मात्रा सूरदास के काव्य की अपेक्षा कहीं अधिक है। उसमें ऐंद्रियता का पूर्ण विकास हुआ है। राधा का जो अनंत सौंदर्य उसमें प्रस्फुटित हुआ है वह सहज अनुमेय है, उसका उपभोग साधारण काव्य-प्रेमी भी कर सकते हैं। अब केशवदास की कला देखिए—

वासों मृग अंग कहैं तोसों मृग नयनी सब,
　　　　　　　　वह सुधाधर तुहूँ सुधाधर मानिए ;
वह द्विजराज तेरे द्विजराजी राजै वह,
　　　　　　　　कलानिधि तूहूँ कला कलित बखानिए ।

रत्नाकर के हैं दोऊ 'केसव' प्रकाशकर—
अंबर बिलास कुवलय हित मानिए ;
वाके अति सीतकर तूहूँ सीता सीतकर,
चंद्रमा सी चंद्रमुखी सब जग जानिए।

केशव की सौंदर्यानुभूति उक्त सभी कवियों से भिन्न है। उन्होंने न तो किसी अलौकिक सौंदर्य की कल्पना की है और न किसी भौतिक सौंदर्य का चित्रण। उनके काव्य में ऐंद्रियता भी नहीं है और सरलता भी नहीं, उसमें है केवल विस्मयोत्पादक शक्ति। वह हममें आनंदोद्रेक करने की अपेक्षा आश्चर्य का भाव ही अधिक उत्पन्न करती है, किसी प्रकार के रूप का अनुभव कराने की अपेक्षा कवि की कवित्व शक्ति का ही अधिक परिचय देती है। अब इन महाकवियों के साथ पद्माकर की सौंदर्यानुभूति का मिलान करके देखने से विदित होगा कि वह सर्वथा भिन्न प्रकार की है। उन्होंने बिलकुल भौतिक तत्वों का वर्णन किया है। उसमें ऐंद्रियता तथा भावानुभूति दोनों ही का अच्छा विकास पाया जाता है। जिस चित्र को उन्होंने उठाया है, उसे मानों जीवित कर दिया है, सर्वजन उपभोग्य बना दिया है, कोमल कलेवरा कामिनी के रूप कांचन का वर्णन है।

सौकुमार्य

सुंदर सुरंग नैन सोभित अनंग रंग,
अंग-अंग फैलत तरंग परिमल के ;
बारन के भार सुकुमारि को लचत लंक,
राजै परजंक पर भीतर महल के।

कहै 'पद्माकर' विलोकि जन रीझैं जाहि,

चंवर चमल के सरल जल थल के ;

कोमल कमल के गुलाबन के दल के,

सुजात गड़ि पायन बिछौना मखमल के।

पर्यंकोपस्थिता कोमलांगी राजकुलांगना के बाह्य-सौंदर्य एवं सौकुमार्य का अत्युक्ति अलंकार की सहायता से जो शब्द-चित्र अंकित किया गया है, वह यद्यपि बहुत उत्कृष्ट नहीं है, किंतु प्रशंसनीय है। इसी के साथ शेली की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी मिलान कर देखने योग्य हैं:—

Like a high born maiden

in a palace—tower,

Soothing her love—laden

soul in secret hour,

With music sweet as love, which

overflows her bower.

दोनों ही कवियों की नायिकाएँ उच्च कुलोद्भवा तथा राज-प्रासाद-वासनी हैं। दोनों ही ने अपनी नायिकाओं की कोमल गति-मति का अंकन किया है। किंतु एक के चित्रांकन के उपादान बाहरी हैं और दूसरे के भीतरी; एक ने पद के स्वभावतः कठिन त्वचा की कोमलता द्वारा नायिका के कोमल प्राण एवं शरीर का परिचय दिया है और दूसरे ने संगीत की सुकुमारता द्वारा उसे

व्यक्त किया है। एक ने 'अनंगरंग' के द्वारा अपनी नायिका की मनोवृत्ति को कुछ गिरा दिया है और दूसरे ने Soothing her love laden soul in secret hour के द्वारा उसकी स्वभाव की पवित्रता का परिचय देकर उसे ऊँचा बना दिया है। दोनों की काव्यसाधना में यही समानता तथा अंतर है। हिंदी तथा उर्दू के कुछ अन्य कवियों के सौकुमार्य के वर्णनों की समीक्षा भी इसी स्थान पर कर लेना अनुचित न होगा।

नाज़ुकी कहती है सुरमः भी कहीं बार न हो।

—अकबर।

यों नज़ाकत से गराँ सुरमा है चश्मे यार को;
जिस तरह हो रात भारी मर्दुमे बीमार को।

—नासिख़।

सँभाले बारे ज़ेवर क्या तेरा नाज़ुक बदन प्यारी;
कज़ी रफ़तार की कहती है बारे हुस्न है भारी।

—देवीप्रसाद 'प्रीतम'।

तुव पग तल मृदुता चितै कवि बरनत सकुचाहिं;
मन में आवत जीभ लौं मन छाले परि जाहिं।

—रसलीन।

सौकुमार्य (Grace) तथा सौंदर्य के प्रदर्शन में भारतीय कवियों ने अत्युक्ति की पराकाष्ठा कर दी है। प्रथम दो वर्णनों की अपेक्षा पद्माकर की सौंदर्यानुभूति सूक्ष्म हुई है, किंतु पिछले दोनों वर्णनों के निकट वह अवश्य ही कुछ स्थूल प्रतीत होती है।

उनका यह मध्यम मार्गावलंबन 'फर्श मखमल पर उनके पाँव घिसे जाते हैं' की प्रसिद्ध लोकोक्ति के अनुकूल हुआ है।

अलस-सौंदर्य के अंकित करने में पद्माकर बहुत ही कुशल हैं:—

> घहराती झुमकें झुकी हैं पाँक चुंबन की,
> लहलही लाँबी लटें लपटी सुलंक पर;
> कहै 'पद्माकर' मज़ानि मरगजी मंजु—
> मसकी सु आँगी है उरोजन के अंक पर।
> सोई रसधार पोस गंधनि समोई स्वेद,
> सीतल सुलोने लोने बदन मयंक पर;
> किन्नरी नरी है, कै छरी है छविदार परी,
> टूटी सी परी है कै परी है पर्यंक पर?

रति-क्रांता नायिका ने कवि की कल्पना के साथ मिलकर जो सजीव दृश्य उपस्थित कर दिया है वह अवलोकनीय है। इस छंद में शैली की शक्ति अपनी पूर्ण मात्रा में विकसित हुई है। इसी से मिलता-जुलता उनका एक दूसरा चित्र भी बहुत सुंदर हुआ है।

> कै रति रंग थकी थिर ह्वै, पलका पर प्यारी परी अलसाय कै;
> त्यों 'पद्माकर' स्वेद के विंदु, लसैं मुकुताहल से तन छाय कै।
> विंदु रचे मेंहदी के लसै पर, तापर यों रह्यो आनन आय कै;
> इंदु मनो अरविंद पे राजत, इंद्रवधून के वृंद बिछाय कै।

कितना सुंदर चित्र है! संभोगशिथिला सुंदरी को उत्प्रेक्षा-लंकार की सहायता से जैसे एकदम प्रत्यक्ष कर दिया है। इसी के साथ Glove (दस्ताना) परिवेष्टित कर-कमल संस्थित जुलिएट का कपोल-सौंदर्य भी देखने योग्य है।

Romeo—

See ! how she leans her cheek upon her hand,
O ! that I were a glove upon that hand.
That I might touch that cheek.

—Shakespear.

रोमियो—

देखो, वह अपने करतल पर कपोल को किस प्रकार रखे है। आह, यदि मैं उस हाथ का ग्लव ही होता—तो कम से कम उसके गाल का स्पर्श-सुख तो पाता।

—(रोमियो-जुलिएट)

पद्माकर ने मेंहदी-चर्चित हाथ पर पड़े हुए आनन की उपमा कमल दल पर इंद्रबधूटियों को बिछाकर बैठे हुए चंद्रमा से देकर नायिका के सौंदर्य को प्रस्फुटित किया है और शेक्सपियर ने ग्लववेष्ठित करतल पर जुलिएट के रखे हुए आनन के सौंदर्य को रोमियो की इस आंतरिक अभिलाषा को व्यक्त कराकर विकसित किया है, कि—'आह मैं उस हाथ का ग्लव ही होता जिससे उसके कोमल कपोल का स्पर्श सुख तो पाता।' पद्माकर ने जिस सौंदर्य को बाहरी उपदानों द्वारा व्यक्त किया है, शेक्सपियर ने उसे एक

प्रेमी की अभिलाषा द्वारा दिखाया है। यदि शेक्सपियर की सफलता सरलता के साथ मानी जायगी तो पद्माकर की सफलता अलंकारिता के साथ हुई है।

पद्माकर के इसी छंद से मिलता हुआ श्रीपति का एक छंद भी बहुत प्रसिद्ध है।

भोर भयो तकिया सों लगी, तिय कुंतल पुंज रहे बगराय कै;
कंजन से करके तल ऊपर, गोल कपोल धरे अलसाय कै।
आनन पै विलसै रद की छवि, 'श्रीपति' रूप रह्यो अति छाय कै;
मानहु राहु सो घायल ह्वै विधु, पौढ़ो है पंकज के दल आय कै।

पद्माकर तथा श्रीपति दोनों ही कवियों के चित्र प्रायः एक ही अवस्था के हैं। किंतु एक ने अपने काव्य-चित्र की नायिका में कोमल रति के चिन्हों को अंकित किया है और दूसरे ने कठोर रति के आघातों को। उसी के अनुरूप एक ने स्वेद बिंदु विलसित अलसित आनन को मेंहदी चर्चित करतल पर सुलाकर उसकी उत्प्रेक्षा कमल दल पर इंद्रवधूटियों को बिछाकर बैठे हुए चंद्र से की है और दूसरे ने रति संग्राम में रदक्षत आनन को हाथों पर स्थित कर उसकी उत्प्रेक्षा राहु से घायल उस व्याकुल विधु से की है, जो अपने सहज विरोधी भाव को भूल पंकज दल पर आकर पौढ़ा हुआ है। चित्र यद्यपि दोनों एक ही से हुए हैं, परंतु कोमल रति की ओर संकेत कर श्रीपति की नायिका की अपेक्षा पद्माकर ने अपनी नायिका को श्रेष्ट-जाति-संभूता, उच्च कुलोद्भवा, तथा कोमल तन-प्राण-समन्विता सिद्ध कर बहुत ही उत्कृष्ट बना दिया।

कितना सुंदर चित्र है! संभोगशिथिला सुंदरी को उत्प्रेक्षालंकार की सहायता से जैसे एकदम प्रत्यक्ष कर दिया है। इसी के साथ Glove (दस्ताना) परिवेष्टित कर-कमल संस्थित जुलिएट का कपोल-सौंदर्य भी देखने योग्य है।

Romeo—

See! how she leans her cheek upon her hand,
O! that I were a glove upon that hand.
That I might touch that cheek.

—Shakespear.

रोमियो—

देखो, वह अपने करतल पर कपोल को किस प्रकार रखे है। आह, यदि मैं उस हाथ का ग्लव ही होता—तो कम से कम उसके गाल का स्पर्श-सुख तो पाता।

—(रोमियो-जुलिएट)

पद्माकर ने मेंहदी-चर्चित हाथ पर पड़े हुए आनन की उपमा कमल दल पर इंद्रवधूटियों को बिछाकर बैठे हुए चंद्रमा से देकर नायिका के सौंदर्य को प्रस्फुटित किया है और शेक्सपियर ने ग्लववेष्ठित करतल पर जुलिएट के रखे हुए आनन के सौंदर्य को रोमियो की इस आंतरिक अभिलाषा को व्यक्त कराकर विकसित किया है, कि—'आह मैं उस हाथ का ग्लव ही होता जिससे उसके कोमल कपोल का स्पर्श सुख तो पाता।' पद्माकर ने जिस सौंदर्य को बाहरी उपदानों द्वारा व्यक्त किया है, शेक्सपियर ने उसे एक

प्रेमी की अभिलाषा द्वारा दिखाया है। यदि शेक्सपियर की सफलता सरलता के साथ मानी जायगी तो पद्माकर की सफलता अलंकारिता के साथ हुई है।

पद्माकर के इसी छंद से मिलता हुआ श्रीपति का एक छंद भी बहुत प्रसिद्ध है।

भोर भयो तकिया सों लगी, तिय कुंतल पुंज रहे बगराय कै;
कंजन से करके तल ऊपर, गोल कपोल धरे अलसाय कै।
आनन पै बिलसै रद की छवि, 'श्रीपति' रूप रह्यो अति छाय कै;
मानहु राहु सो घायल ह्वै विधु, पौढ़ो है पंकज के दल आय कै।

पद्माकर तथा श्रीपति दोनों ही कवियों के चित्र प्रायः एक ही अवस्था के हैं। किंतु एक ने अपने काव्य-चित्र की नायिका में कोमल रति के चिन्हों को अंकित किया है और दूसरे ने कठोर रति के आघातों को। उसी के अनुरूप एक ने स्वेद विंदु विलसित अलसित आनन को मेंहदी चर्चित करतल पर सुलाकर उसकी उत्प्रेक्षा कमल दल पर इंद्रवधूटियों को विछाकर वैठे हुए चंद्र से की है और दूसरे ने रति संग्राम में रदक्षत आनन को हाथों पर स्थित कर उसकी उत्प्रेक्षा राहु से घायल उस व्याकुल विधु से की है, जो अपने सहज विरोधी भाव को भूल पंकज दल पर आकर पौढ़ा हुआ है। चित्र यद्यपि दोनों एक ही से हुए हैं, परंतु कोमल रति की ओर संकेत कर श्रीपति की नायिका की अपेक्षा पद्माकर ने अपनी नायिका को श्रेष्ठ-जाति-संभूता, उच्च कुलोद्भवा, तथा कोमल तन-प्राण-समन्विता सिद्ध कर बहुत ही उत्कृष्ट बना दिया।

वह हस्तिनी आदि नायिकाओं के समान बर्बर ताड़नाओं के सहन करने में सर्वथा असमर्थ हैं।

अधखुली कंचुकी उरोज अध आधे खुले,
अधखुले वेष नख रेखन के झलकैं
कहै 'पदमाकर' नवीन अधनीवी खुली,
अधखुले छहरि छराके छोर छलकैं।
भोर जग प्यारी अध उरध इतै की ओर,
भाषी झिखि झिरकि उचारि अध पलकैं;
आँखै अधखुली अधखुली खिरकी है खुली,
अधखुले आनन पै अधखुली अलकैं।

आरस सों आरत सम्हारत न सीस-पट,
गजब गुजारत गरीबन की धार पर;
कहै 'पदमाकर' सुगंध सरसावै सुचि,
बिथुरि बिराजै बार हीरन के हार पर।
छाजत छबीली छिति छहरि छरा की छोर,
भोर उठि आई केलि मंदिर के दुवार पर;
एक पग भीतर सु एक देहरी पै धरे,
एक कर कंज एक कर है किवार पर।

प्रभातोत्थिता विपर्यस्त-वसना वार वधूटियों के अलस-सौंदर्य का, उक्त दोनों छंदों में, जैसा हृदय-ग्राही एवं मूर्तमान चित्रांकन हुआ है वह पद्माकर जैसे अनुभवी तथा रससिद्ध कवि के सर्वथा योग्य है। सुरुचि के वर पत्र कुछ महानुभावों को उक्त वर्णनों में

गलित शृंगार की गंध क्यों न मिले, पर कवि ने जिस चित्र को अंकित करना चाहा है, उसमें उसे पूर्ण सफलता मिली है। इन्हें पढ़कर पीयूष-वर्षी कवि जयदेव की निम्नांकित पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं।

"व्यालोलः केशपाशस्तरलित मलकैः स्वेदलोलौ कपोलौ,
दृष्टा बिम्बाधर श्रीकुच कलशरुचाहारिताहारयष्टिः।
कांचीकांचिद्गताशां स्तन जघनपदं पाणिनाछाद्यसद्यः,
पश्यंती सत्रपंमान्तदपि विलुलित स्रग्धरेयन्धुनोति॥"

साथ ही सुप्तोत्थिता विद्या का चित्र भो नेत्रों के सम्मुख खिंच जाता है—

"अद्यापि तां कनक-चम्पक-दाम गौरीं,
फुल्लारविंद-नयनां तनु-रोम-राजिम्।
सुप्तोत्थितां मदन-विह्वलतालसाङ्गीं,
विद्याप्रमादगलितामिव चिन्तयामि॥"

शेली की लावण्यमयी सलज्जा नायिका भी दर्शनीय है—

............Like a naked-bride
Glowing at once with love and loveliness,
Blushes and trembles at its own excess.

शेली की नायिका लज्जा-भार के कारण अपने शरीर को सम्हालने में असमर्थ हो रही है और पद्माकर की नायिका आलस्य के कारण उसे सम्भालने में असमर्थ हैं क्योंकि वह वारवधू है और उसके निकट लज्जा की कोई विशेष आवश्यकता नहीं।

नीचे के दोहे में नायिका की तनदीप्ति का अच्छा

देह-दीप्ति वर्णन आया है—

> जुवति जुन्हाई सों न कछु और भेद अवरेखि ;
> तिय आगम पिय जानिगो चटक चाँदनी पेखि।

शेक्शपियर ( Shakespear ) ने भी जुलिएट ( Juliet ) के वर्णन में लिखा है—

"Oh, She doth teach the torches to burn bright.
Her beauty hangs upon the cheek of night.
Like a rich jewel in an Ethiops ear,
Beauty too rich for use, for earth too dear;
So shows a showy dove trooping with crows.
As yonder lady, over her fellows shows.

(Romeo & Juliet)

आइमोजन की सौंदर्य प्रभा भी मिलान करने योग्य है :—

"Cytherea,
How bravely thou becomes thy bed, fair lily.
Add whiter than the sheets.
Tis her breathing that perfumes the
chamber thus, the flame, the taper,

Bows towards her; and would
under peep her lids.
To see the enclosed light, now canopied,
With blue of heavens own tinct."

(Cymbeline)

अंगरेजी के प्रथम छंद में जुलिएट के शरीर के प्रकाश द्वारा मशालों में तेज प्रदान किया गया है तथा उसके सौंदर्य से इथियप के कर्णमाणि के समान रात्रि के आनन को सुप्रभ बनाया गया है। दूसरे छंद में पर्यंकोपस्थिता साइथिरिया के गौरवर्ण की उपमा कुमुदिनी से देकर बताया गया है कि उसकी उपस्थिति से उसके सहज प्रकाश के कारण उसके बिस्तर की उज्ज्वल चादर किस प्रकार उज्ज्वल तर हो जाती है, तथा उसके श्वासोच्छ्वास से कमरा किस प्रकार सुगंधित हो रहा है और मोमबत्ती का प्रकाश उसके प्रकाश के संमुख किस प्रकार मंद पड़कर, पलक के पट के पीछे श्वेत एवं नील रंग के चौखटवाले झरोखे में छिपे हुए प्रकाश के लिए छटपटा रहा है। महाकवि के दोनों हीं छंदों के भाव बड़े उत्कृष्ट हुए हैं, इसमें संदेह नहीं। शरीर की उज्वल द्युति का वर्णन इससे अच्छा और क्या हो सकता है! किंतु हमें नम्रता के साथ कहना पड़ेगा कि पद्माकर का छंद विस्तार-लघुता के विचार से कहीं उत्तम बन पड़ा है।

हिंदी के दो-चार अन्य कवियों की सौंदर्य-प्रभा का वर्णन भी मिलान करने योग्य है।

छीर के तरंग की प्रभा को गहि लीन्हीं तिय,
कीन्हीं छीरसिंधु छिति कातिक की रजनी
आनन प्रभा ते तन छाहू छपाए जाति,
भौंरन की भीर संग लाए जात सजनी।
—दास।

अंगन में चंदन चढ़ाय घनसार सेत—
सारी छीर-फेन कैसी आभा उफनाति है;
राजत रुचिर रुचि मोतिन के आभरन,
कुसुम कलित केस सोभा सरसाति है।
कवि 'मतिराम' प्रान प्यारे को मिलन चली,
करिकै मनोरथन मृदु मुसुकाति है;
होति न लखाई निसिचंद की उज्यारी मुख,
चंद की उज्यारी तन छाहौं छपि जाति है।
—मतिराम।

दास, मतिराम तथा पद्माकर तीनों ही ने अभिसारिकाओं का वर्णन किया है। शुक्लाभिसारिकाओं की वेश-भूषा इसप्रकार की होती है, कि वह चंद्र-ज्योत्स्ना में छिप जाय। इसके लिए नाना प्रकार के कृत्रिम उपादानों की सहायता ली जाती है। तदनुकूल दास एवं मतिराम दोनों ही कवियों ने अपनी-अपनी नायिकाओं को सज्जित करने की चेष्टा की है। दास जी के उपादान कुछ स्वभाव-विपरीत हो गए हैं। किंसुक वसंत में फूलता है, फिर कार्तिक मास की शरद-निशा में उसका उपयोग किस प्रकार किया जा

सकता है ? पद्मिनी नायिका के पीछे यद्यपि भ्रमरों का उड़ना सर्वथा स्वाभाविक है, पर रात्रि में उनका उड़ना काल-विरुद्ध-दूषण है यद्यपि कुछ प्राचीन काव्यों में रात्रि में उनका वर्णन पाया जाता है, किंतु हमारे विचार से ऐसा उचित नहीं है ; साथ ही—उसके साथ उनके उड़ने से नायिका का अभिसार भी दूषित हो जाता है—वह अपने को छिपाने में असमर्थ हो जाती है। ऐसी अवस्था में या तो भ्रमरों का उल्लेख ही नहीं होना चाहिए अथवा ऐसे उपकरणों का प्रयोग होना चाहिए, कि भ्रमर साथ में रहें भी नहीं और पद्मिनी नायिका की स्पष्ट अभिव्यक्ति भी हो। मतिराम जी का वर्णन साफ सुथरा तथा स्वभाव सम्मत हुआ है—विस्तृत एवं विस्पष्ट हुआ है। उन्होंने जिस भाव को 'होति न लखाई निस चंद की उज्यारी मुख चंद की उज्यारी तन छाहौं छपि जाति है' के द्वारा व्यक्त किया है, उसी को पद्माकर जी ने 'तिय आगम पिय जानिगो चटक चाँदनी पेखि' कह कर दिखाया है। कवित्त की अपेक्षा दोहा बहुत ही छोटा छंद है। थोड़े से सांकेतिक शब्दों में अधिक से अधिक भाव को प्रदर्शित करने में ही उसकी सफलता मानी जाती है। हमारे विचार से मतिराम जी ने जिस भाव को इतने विस्तार के साथ प्रदर्शित किया है पद्माकर जी के दोहे में उसका पूर्ण समावेश हो गया है वरन् कुछ और का भी। दोहे में शुक्लाभिसारिका का बहुत ही सफल निर्वाह हुआ है। काव्य की सफलता विस्तृत वर्णन में ही नहीं है, वरन पाठकों की कल्पना के लिए विस्तृत विहार-क्षेत्र के प्रस्तुत करने में भी है। इस दोहे

के द्वारा पद्माकर जी वैसा करने में पूर्ण सफलीभूत हुए हैं। यह दोहा उनकी प्रतिभा का एक उत्कृष्ट नमूना है।

पद्माकर ने एक दूसरे छंद में भी नायिका की सौंदर्य-प्रभा का वर्णन किया है वह यद्यपि उक्त दोहे के समान स्वाभाविक नहीं हुआ है, फिर भी अवलोकनीय अवश्य है।

जाही जुही मल्लिका चमेली मन मोदिनी की,
कोमल कुमोदिनी की उपमा खराब की;
कहै 'पद्माकर' त्यों तारन विचारन को,
बिगर गुनाह अजगैबी ग़ैर आब की।
नूर भरी चोखी चांदनी की छवि झलकत,
पलक में झाँनी छीन आब महताब की;
पा परि चहत पीय कापर परैगी आज;
गरद गुलाब की अबाई आफताब की।

नायिका के अधरों में मधुर पुष्पों की वाटिका की सुगंधि का अनुभव कवि के कोमल मस्तिष्क के अनुकूल ही हुआ है। पर पद्माकर की नायिका के शरीर की सुगंधि ने मधुर पुष्पों की अर्थात् 'जाही जूही मल्लिका चमेली मन मोदिनी की कोमल कुमोदिनी' की वाटिका की उपमा को खराब कर दी है—उसकी सुगंधि उस वाटिका से भी मधुरतर है।

पद्माकर की नायिका की सौंदर्य-प्रभा भी बड़ी ही तेजमयी है। तारों की तो बातही क्या, तारा-राज चंद्र की चाँदनी ही नहीं स्वयं वे भी उसके सम्मुख निष्प्रभ हो जाते हैं, इसी से नायिका के प्रेमी ने उसे आफताब ( सूर्य ) बताया है। उसके सम्मुख शेक्स-पियर की जूलियट का सौंदर्य, जिसके लिए कहा गया है कि "Oh she doth teach the torches to burn bright." जैसे मंद पड़ जाता है।

अतिशयोक्ति के लिए तो भारतीय कवि प्रसिद्ध ही हैं। सौंदर्य-प्रभा के संबंध में दो तीन छंद बहुत प्रचलित हैं:—

> अवयवेषु परस्परबिंबिते—
>
> ष्वतुलकांतिषु राजति तत्तनोः।
>
> अयमयं प्रविभाग इति स्फुटं ;
>
> जगति निश्चिनुते चतुरोऽपि कः॥

अर्थात् नायिका के अवयव अपनी निर्मल कांति के कारण परस्पर प्रतिबिंबित हो रहे हैं, जिससे उनके विभाग का ज्ञान ही नहीं होता। उनका सत्य ज्ञान संसार का कोई चतुर प्राणी ही पा सकता है।

सुंदरी ( कीदृशी ) सा भवेत्येव विवेकः केन जायते।
प्रभा मात्रंहि तरलं दृश्यते न तदाश्रयः ॥—( दंडी )

अर्थात् सुंदरी की सौंदर्य-प्रभा इतनी अधिक है, कि केवल प्रभा मात्र दिखाई पड़ती है, उसमें छिपा हुआ उसका आश्रय अर्थात् नायिका का शरीर नहीं दिखाई पड़ता।

दिला ! क्योंकर मैं उस रुख़सारे-रोशन के मुक़ाबिल हूँ।
जिसे ख़ुरशीदे महशर देखकर कहता है, मैं तिल हूँ।

—अकबर

अर्थात्

वह मुख भरि दृग क्यों लखौं अतिशय ज्योतिष् मान ;
प्रलय-भानु जेहि तकि कहै, "मैं मुख-मसा समान"।

इस अतिशयोक्ति-पूर्ण सौंदर्य-प्रभा के सन्मुख कविवर हनुमान की नायिका की सौंदर्य-प्रभा जिसके लिए उन्होंने लिखा है, 'दबि दामिनी जाति प्रभा निरखे कितनी छबि मंजु मसाल की है।' या सेनापति की नायिका की सौंदर्य-प्रभा, जिसके लिए लिखा गया है कि 'झलकत गोरी देह वसन झीने में मानों फानुस के अंदर दिपति दीप ज्योति है' तो पानी ही भरेगी। हाँ, मिल्टन के ईव का वर्णन अवश्य सर्वोपरि और साथ ही स्वाभाविक हुआ है।

So lovely fair—

That what semmed fair in all
the world seemed now.
Mean or in her summed up
in her contained.

दोहा

कछु गज गति के घाटनि, छिन-छिन छीजत सेर ;
बिधु बिकास बिकसत कमल, एक दिनन के फेर।

मुग्धा का यौवनागम है, उसे कवि ने विरोधाभास अलंकार की सहायता से प्रदर्शित किया है।

समय का ऐसा हेर फेर हो गया है, कि गज-गति की घटत से सिंह प्रत्येक क्षण क्षीण होता जाता है अर्थात् ज्यों-ज्यों गति मंद होती जाती है त्यों-त्यों कमर पतली पड़ती जाती है, चंद्रमा के विकास से कमल विकसित होता है—यह भी विपरीत घटना है, तात्पर्य यह है, कि ज्यों-ज्यों मुख-चंद्र की छटा बढ़ती जाती है त्यों-त्यों नेत्र विकसोन्मुख हो रहे हैं। इसी से तो बिहारी ने भी कहा है—

पल पल पर पलटन लगे जाके अंग अनूप ;
ऐसी इक ब्रज बाल के को कहि सकत सरूप।

पद्माकर का दोहा उनकी विदग्धता का परिचायक है।

ए अलि, या बलि के अधरान में आनि चढ़ी कछु माधुरई सी ;
ज्यों 'पदमाकर' माधुरी त्यों कुच दोउन की चढ़ती उनई सी।
ज्यों कुच त्योंही नितंब चढ़े कछु ज्योंही नितंब त्यों चातुरई सी ;
जानि न ऐसी चढ़ा चढ़ि में केहिं धौं कटि बीचहि लूट लई सी।

शैशव पर यौवनराज ने चढ़ाई की, जिसमें यौवन की विजय हुई। विजयी सेना द्वारा ऐसे अवसर पर किसी पदार्थ का लुट

मुँदरी-तुल्य, किसी ने सिवार-समान, किसी ने मृणाल के तार-सा, तथा किसी ने बाल से भी बारीक बताया है, किंतु बिहारी ने

कटि

'सूछम कटि परब्रह्म लौं अलख लखी नहिं जाय' कहकर सभी कवियों के मुख में ताला लगा दिया। सूक्ष्मता का वर्णन इससे अधिक और कोई क्या कर सकता है। शंकर कवि ने बिहारी के संकेत की दार्शनिक व्याख्या कर दी है।

पास के गए तैं एक बूंदहू न हाथ लगै,
दूर सों दिखात मृगतृष्णिका में पानी है ;
'शंकर' प्रमाण-सिद्ध रंग को न संग पर,
जान पड़े अंबर में नीलिमा समानी है।
भाव में अभाव है अभाव में धौं भाव भस्यो,
कौन कहे ठीक बात काहू ने न जानी है ;
जैसे इन दोउन में दुविधा न दूर होत,
तैसे तेरे कमर की अकथ कहानी है।

एक उर्दू कवि जैसे कमर की भूलभुलैया में पड़ गया है। वह पूछता है—

सनम सुनते हैं तेरे भी कमर है।
कहाँ है, किस तरफ को है, किधर है ?

संस्कृत के कवि ने तो उसे एकदम असत ही प्रमाणित कर दिया है।

अनल्पैर्वादीन्द्रैरगणित-महायुक्ति-निवहै-
र्निरस्ता विस्तारं क्वचिद् कलयंती तनुमपि।

असत् ख्याति-व्याख्याधिक चतुरिमख्यातमहिमा-
ऽवलग्ने लग्नेयं सुगमतरसिद्धांतसरणिः ॥ *

किंतु इन कवि-पुंगवों के कटि-वर्णनों के साथ पद्माकर की लुटी हुई सी कटि भी कम महत्व नहीं रखती, कटि का एकांत अभाव मानना युक्तिसंगत नहीं, कम से कम विहारी के विचारानुसार उसे ब्रह्मवत् तो मानना ही चाहिए। साधारण कामिनी की कटि के वर्णन के लिए दार्शनिक तत्वों के उल्लेख की उन्हें (पद्माकर को) कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई फिर परमब्रह्म से उसकी समता करना तो उनकी दृष्टि में सर्वथा अनुचित था, किंतु साथ ही कटि की सूक्ष्मता को उससे कम प्रदर्शित करने की उनकी

---

* माध्यमिकों के 'शून्यवाद' को बड़े बड़े दार्शनिक शंकराचार्य, वाचस्पति मिश्र, श्रीहर्ष और उदयनाचार्य जैसे—अनेक विकट विद्वानों के मारे संसार में जब कहीं जरा भी ठहरने को ठौर न मिली—तो वह (शून्यवाद) सब ओर से सिमट कर तुम्हारी कमर में आकर छिप गया। असत् ख्याति अपनी जान बचाने को लक्ष्मी जी की कमर में आ छिपी—अब उसे कोई पा नहीं सकता, जब 'आश्रय ही का कहीं पता नहीं, नज़र से गायब है, तो 'आश्रित' का खोज कैसे मिले—'आधार ही शशशृंग है तो उसके आधेय का पता कैसे चले।

शून्य में शून्य मिल गया, असत् में असत् समा गया। माध्यमिकों की असत्ख्याति (शून्यवाद) और लक्ष्मी जी की कमर दोनों ही असत् हैं।

—श्री पद्मसिंह शर्मा।

इच्छा नहीं थी, जितना कि उनके पूर्ववर्ती कवियों ने दिखाया है। इसी से 'केहि धौं कटि बीचहिं लूट गई सी' कह कर एक बार तो उन्होंने असत् के समान उसका लोप ही कर दिया, पर यह बहुत उचित न होता; इसी से 'सी' शब्द के द्वारा उन्होंने उसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म असत् नहीं वरन् असत् के समान स्थिति की रक्षा कर ली है। इस सवैया के अंतिम पंक्ति का प्राण इसी 'सी' शब्द द्वारा रक्षित है। पद्माकर के इस वर्णन में जैसे नायिका का रोम-रोम उछल रहा है। (Hor whole being is orying out)

कुच

ब्रजभाषा के कवियों ने कामिनियों के कुचों का वर्णन बड़ी तल्लीनता से किया है। चक्रवाक, कमल, शिव, गिरि-घट गुंबज, फूल, फल, करिकुंभ आदि की उपमाओं द्वारा उनके सौंदर्य को यथासाध्य बहुत ही विस्पष्ट भाव से व्यक्त करने की चेष्टा की है।

> ओढ़ में चोली जराय जरी तिहि पै खरी पार बगारत सौंधे ;
> छोरि धरी हरी कंचुकी न्हान को अंगन ते जगे जोति के कौंधे ।
> छाई उरोजन की छवि यों 'पदमाकर' देखत ही चकचौंधे ;
> भाजि गई लरिकाई मनों लरिकै करिकै दुहूँ दुंदुभि औंधे ।

की चेष्टा की गई है। इसके अतिरिक्त किसी ने उनमें नवाब का रूपक बाँधा है, किसी ने चौदह रत्नों को उपलब्ध किया है और किसी ने दशावतार का दर्शन पाया है। किंतु पद्माकर को यह अतिरिक्त कला प्रदर्शन रुचिकर नहीं हुआ। उन्होंने उनके कार्यों द्वारा जो अनुभूति लाभ की, उसी का सरल वर्णन किया है।

रूप रस चाखैं मुख रसना न राखैं फिर,
भाषैं अभिलाषैं तेज उरसे मभारतीं;
कहै 'पदमाकर' त्यों कानन बिनाहूँ सुनैं,
आनन के बैन यों अनोखे अंग धारतीं।
विना पाँव दौरैं बिन हाथ हथियार करैं,
कोर के कटाच्छन पटासे भूम भारतीं;
पाँखन बिना ही करैं लाखन ही वार आँखैं,
पावतीं जो पाँखै तो कहा धौं कर डारतीं?

ये आँखे बिना मुख तथा जिह्वा के सर्वथा रूप रस का आस्वादन करती हैं एवं हृदय की तीव्र अभिलाषाओं को प्रकट करती हैं, बिना कानों के ही सुनती हैं तथा औरों के वचनों को ग्रहण करती हैं, बिना पैर ही दौड़ती हैं, बिना हाथ ही हथियार करती हैं—तीखे कटाक्षों का ही पटा भाँजती है, पंख न होने पर भी लाखों वार करती हैं—कहीं इन्हें पंख होते तो न जाने क्या कर डालतीं। विनोक्ति अलंकार ( Speech of absence ) की सहायता से

---

नोट—जहाँ कोई वस्तु किसी वस्तु के बिना सुंदर अथवा हीन वर्णित हो वहाँ विनोक्ति अलंकार होता है। इसे अंग्रेज़ी में Speech of absence कह सकते हैं।

शृङ्गार रस का परिपाक करते हुए आँखों का कितना सरस वर्णन किया गया है! आँखों के इन्हीं गुणों के कारण ही तो इन्हें आत्मा का दर्पण कहा जाता है। साथ ही कटाक्षों की तीक्ष्णता भी अवलोकनीय है—

कहा कहौं तो आँगुरिन, अनी कहीं चुभि जाय ;
अनियारे चख लखि सखी, कजरा देत डराय।

एक सखी नायक से कहती है कि, "मेरी सखी अपने हाव-भाव भरित चपल तीक्ष्ण नेत्रों में इसी से काजल देते डरती है, कि कहीं उसकी उँगलियों में उनकी अनी न चुभ जाय?" इससे अधिक कटाक्षों की तीक्ष्णता और क्या हो सकती है? इन दोनों सूक्तियों के सम्मुख Dante Gabriel Rossetti की ये पंक्तियाँ Her eyes were deeper than the depth of waters stilled at even फीकी पड़ जाती हैं। किंतु एक कवि ने कटाक्षों द्वारा कवियों की उक्तियों को अच्छा काटा है।

हरिन निहारि जकि रहे हिय हार मानि,
बारिचर बारिज की बानिक बिकाती है;
हारी होत तिय पछतानी कर छाती दै दै,
धीर मनरंजन के खंजन जँभाती है।
दीबे को समान उपमान इन नैनन की,
कबिन के मन में उकति अधिकाती है;
प्यारी के अनोखे अनियारे ईछनन छ्वै छ्वै,
तीछन कटाच्छन ते कटि-कटि जाती है।

अतिशयोक्ति की हद हो गई !

गौरांगी नायिकाओं के शरीर में श्याम तिल की भी एक विशेष शोभा होती है। हिंदी के प्रायः सभी श्रृंगार-काव्यकारों ने उसकी सुषमा का वर्णन किया है। एक मुसलमान कवि ने तो 'तिल-शतक' नामक एक ग्रंथ ही लिख डाला है। पद्माकर ने भी अपने एक छंद में नायिका के तिल का वर्णन किया है।

तिल

कैधों रूपरासि में सिंगार रस अंकुरित;
कंकुरित कैधों तम तड़ित जुन्हाई में;
कहै 'पदमाकर' किधों यों काम कारीगर,
नुकता दियो हैं हेम फरद सुहाई में।
कैधों अरविंद में मलिंद सुत सोयो आनि,
कैधों तिल सोहत कपोल की लुनाई में;
कैधों पस्यो इंदु में कलिंदी जल विंदु कैधों,
गरक गोविंद गयो गोरी की गोराई में।

द्विज कवि ने भी इसी से मिलती जुलती कल्पना की है।

रूप की रासि में कै रसराज को अंकुर आनि कढ़यो सुभ होना ;
कै ससि ने तम ग्रास कियो तेहि को रह्यो शेष दिखात सो कोना।
प्यारी के गोरे कपोलन पै 'द्विज' राजि रह्यो तिल स्याम सलोना ;
कै मधुपान पस्यो अलमस्त किधौं अरविंद मलिंद को छौना।

रंगपाल कवि की कल्पना भी प्रशंसनीय है—

कैधौं कोकनद पै परी है रसराज छोर,
कैधौं मैन भालनी मैं नीलम नगीनो है;
तारापति गोद मैं सनि को तनय कैधौं,
कुंदन मुकुर मैं मलिंद बाल लीनो है।
'रंगपाल' गाल पै रसाल तिल सोहै किधौं,
प्यारो रसिक राय मन हरलीनो है,
कैधौं रूप-रतन खजाने के सदन पर,
मदन महीपति मुहर करि दीनो है।

तिल-वर्णन पर हिंदी-साहित्य के ये दोनों चुने हुए छंद हैं। संदेहालंकार की योजना से तिल का जैसा सौंदर्य प्रकट किया गया है, वह प्रशंसनीय है; पर पद्माकर के छंद का भी एक विशेष स्थान है। उसकी अंतिम पंक्ति 'कैधौं गरक गोविंद गयो गोरी की गोराई में' तो बहुत ही सुंदर बन पड़ी है। हिंदी कवियों ने तिल का वर्णन एक पहेली के रूप में किया है। "जाकी रही भावना जैसी, हरि मूरत देखी तिन तैसी।"—वाली कहावत चरितार्थ की है। विविध कवियों ने उसका विविध रूप में वर्णन किया है।

प्रकृति-पुरुष के अनुराग-आकर्षण से ही सृष्टि का आविर्भाव हुआ है और उनके विच्छेद में ही इसका अवसान माना गया है। अस्तु, अनुराग अथवा प्रेम ही इस सृष्टि का मूल है। मूल के बिना वृक्ष जीवित नहीं रह सकता। प्रेम के बिना यह

सृष्टि टिक नहीं सकती। प्रकृति पुरुष के इसी असीम प्रेम की प्रतिच्छाया हम नर-नारी के प्रेम-योग में पाते हैं। सांसारिक जीवन में इस प्रेम की छाया की महिमा भी अपार है, अनंत है। इसी से प्रायः सभी विश्व-कवियों ने अलौकिक एवं लौकिक प्रेम के स्तवन द्वारा अपनी लेखनी को पवित्र किया है। वाल्मीकि, व्यास, भवभूति, कालिदास, होमर, शेक्सपियर गेटे, शिलर दांते, वर्जिल, शेली, सूर, तुलसी आदि प्रायः संपूर्ण कवियों ने प्रेम के गीत गाए हैं। राम और सीता, कृष्ण और राधा, फर्डिनंड और मीरांडा, आदि सभी का इस संसार से प्रस्थान हो चुका है; किन्तु उनकी प्रेम-गाथा अब भी जीवित है, इस मर्त्यलोक में वह अब भी अमर प्रेमसुधा की वर्षा करती है। पद्माकर ने भी अपने काव्य में उसी प्रेम का प्रदर्शन किया है। भारतीय प्रेम की प्रारंभिक अवस्था का चित्र उन्होंने अच्छा दिखाया है।

रूप दुहूँ की दुहून सुन्यो सु रहैं तबते मनो संग सदाही;
ध्यान में दोऊ दुहून लखैं हरपै अँग अँग अनंग उछाही।
मोहि रहे कब के यो दूहूँ 'पद्माकर' और कछू सुधि नाहीं;
मोहन को मन मोहिनि में बस्यो मोहिनि को मन मोहन माहीं।

ये इत घूँघट घालि चलैं उत बाजत बाँसुरी की धुनि खोलै;
ज्यों 'पदमाकर' वे इतै गोरस लै निकसे यों चुकावत मोलै।
प्रेम के पंथ सुप्रीति के पैंड में पैठत ही है दसा यह जोलै;
राधा भई भई स्याम की मूरति स्याम भई भई राधिका डोलै।

विद्यापति का चित्र भी कुछ ऐसा ही हुआ है।

पथ-गति नयन मिलल राधा कान।
दुहु मन मनसिज पूरल सँधान।
दुहुँ मुख हेरइत दुहुँ भेल भोर।
समय न बूझए अचतुर चोर।
विदगधि संगिनि सब रस जान।
कुटिल नयन कएलहि समधान।
चलल राज-पथ दुहुँ उरझाई।
कह कवि-शेखर दुहुँ चतुराई।

विद्यापति तथा पद्माकर दोनों ही ने प्रायः एक ही अवस्था का चित्र अंकित किया है। किंतु विद्यापति की अपेक्षा पद्माकर के चित्र में उन्माद, तल्लीनता एवं विदग्धता कहीं अधिक पाई जाती है। मैथिल-कवि-कोकिल का यह चित्र उनके चित्र के सम्मुख फीका पड़ गया है। इसकी अपेक्षा देव जी का चित्र कहीं उत्तम बन पड़ा है।

रीझि-रीझि रहसि-रहसि हँसि-हँसि उठै,
आँसे भरि आँसू नित कहत दई-दई;
चौंकि-चौंकि चकि-चकि उचकि-उचकि 'देव',
जकि-जकि बकि-बकि परत बई-बई।
दुहुँन को रूप गुन दोउ बरनत फिरैं,
घर न थिरात रीति नेह की नई-नई;
मोहि-मोहि मोहन को मन भयो राधामय,
राधा मन मोहि-मोहि मोहन मई-मई।

देवजी की राधा पद्माकर की राधा की अपेक्षा अत्यधिक अधीर हैं। उनकी अधीरता के कारण उनका प्रेम प्रकट हो चला है, वह प्रथमावस्था पार कर द्वितीय अवस्था में पहुँच गया है। इससे अब उनमें वह लज्जा का भाव भी नहीं रहा। एक परकीया नायिका में प्रेम का यह प्रकट स्वरूप कहाँ तक श्लाघ्य है इस स्थल पर उसकी विवेचना अभीष्ट नहीं; पर इतना तो पद्माकर की राधा के संबंध में अवश्य ही कहा जायगा कि उनकी लज्जा भारतीय आदर्श के अनुरूप है, साथ ही देव की राधा की प्रेम-ज्वाला की अपेक्षा उनकी प्रेम-ज्वाला भी कम नहीं है। इसके अतिरिक्त पद्माकर के काव्य में उभय पक्ष के सम प्रेम तथा सम व्यवहार का चित्रण हुआ है, जो सर्वथा स्वाभाविक है; किन्तु देव के काव्य में राधा की व्याकुलता जिस मात्रा में प्रदर्शित की गई है, कृष्ण की वैसी नहीं, यद्यपि संसार में अधिकतर नारी जाति की अपेक्षा पुरुष का ही प्रेम चंचल एवं स्पष्ट देखा जाता है। कपिल के अनुसार भी प्रकृति एवं पुरुष सम भाव से पारस्परिक सम्मिलन के लिए प्रस्तुत रहते हैं। प्रेम की अग्नि जब तक दोनों हृदयों में बराबर जागरित नहीं होती तब तक कोई आनंद ही नहीं, फिर 'यह मुमकिन नहीं कि, 'दर्द इधर हो उधर न हो'। पद्माकर के इस काव्य-चित्र में आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक भावों का सम सम्मिश्रण है—दोनों ही सम भाव से सजीव एवं मूर्तिमान हो उठे हैं। उनके राधा-माधव के द्वैत-भाव के नाश तथा अद्वैत संबंध के विकास को—दो शरीर एक प्राण के समवाय

को देखकर मार्ले विदन की निम्नांकित पंक्तियाँ सामने आ जाती हैं।

A two fold existence,
I am where thou art.
My heart in the distance,
Beats close to thy heart.

अर्थात्

मेरी और तुम्हारी स्थिति यद्यपि दो शरीरों में है,
पर मेरी आत्मा वहीं रहती है जहाँ तुम हो;
मेरा हृदय दूर रहते हुए भी तुम्हारे हृदय के सन्निकट ही है।

पद्माकर का यह काव्य-चित्र उनकी मानव-सौंदर्य-प्रदर्शनात्मक शक्ति का एक उत्तम उदाहरण है।

पद्माकर ने प्रेम-क्रीड़ा एवं उन्मत्त भावनाओं के अनेक चित्र अंकित किए हैं, जो एक से एक बढ़कर सुंदर हैं, और ऐसे हैं कि उनके जोड़ के छंद हिंदी-साहित्य में कदाचित् ढूँढ़ने

प्रेम-क्रीड़ा

पर ही मिलें नहीं। फाग खेलने की उन्मत्तावस्था में कुछ ब्रजबालाओं ने मिल कर श्याम की जैसी दुर्दशा की है, वह देखने ही योग्य है।

चंदकला चुनि चूनरि चारु दई पहिराय सुनाय सुहोरी;
बेंदी बिसाल रची 'पद्माकर' अंजन आँजि समाज कै रोरी।
लागी जबै ललिता पहिरावन स्याम को कंचुकि केसर बोरी;
हेरि हरी मुसक्याइ रहीं अँचरा मुख दै वृषभानु-किसोरी।

नटखट श्याम अपनी इस अवस्था पर खीझें हों या रीझें, पर

उनके साथी तो उनके उस वेश को देखकर वृषभानु-किशोरी के समान मुसकाए ही नहीं, खूब ठठाकर हँसे होंगे और अब भी पद्माकर के काव्य-चित्र की सहायता से जो लोग अपने कल्पनाकाश में उनकी उस अवस्था का अनुभव करने की चेष्टा करेंगे वे अवश्य ही अपने मन में एक प्रकार के पवित्र आनंद तथा मधुर गुदगुदी का सहज सुख अनुभव करेंगे।

इस काव्य-चित्र में यद्यपि कवि ने नारियों की उन्मत्तावस्था का वर्णन किया है, पर साथ ही वृषभानु-किशोरी की मुस्कराहट के समय मुख में आँचल देकर आर्यमहिलाओं की मर्यादा की सहज ही रक्षा कर ली है। इतनी उन्मत्त भावनाओं का वर्णन करते हुए भी मर्यादा की ऐसी रक्षा करना साधारण कवि का काम नहीं है।

होली खेलकर लौटी हुई एक ब्रजबाला का चूनरी निचोड़ने का चित्र भी बड़ा ही सजीव एवं हृदयस्पर्शी हुआ है।

आई खेलि होरी घरै नवल किसोरी कहूँ,
बोरी गई रंगन सुगंधन झकोरै हैं;
कहै 'पदमाकर' इकंत चल चौकी चढ़ि,
हारन के बारन तें फंद बंद छोरै है।
घाँघरे की घूमन सु उरून दुबीचैं दाबि,
आँगि हूँ उतारि सुकुमारि मुख मोरै है;
दंतन अधर दाबि दूनर भई सी चापि,
चौवर पचौवर कै चूनरी निचोरै है।

एक दूसरी ब्रजबाला नंदलाल से होली खेलने गई, उन्होंने

उसे अबीर से भर दिया, बेचारी पीड़ा से घबड़ाकर वहां से भागी, एकांत में जाकर आँखों का अबीर धोकर उसने किसी प्रकार साफ किया, पर उनमें केवल अबीर तो भरा नहीं था, स्वयं नंदलाल भी समा रहे थे। अतः, उसकी पीड़ा किसी प्रकार कम न हुई।

एकै संग धाए नंदलाल औ' गुलाल दोऊ,
दृगनि गए जु भरि आनंद मढ़ै नहीं;
धोय-धोय हारी 'पद्माकर' तिहारी सौंह,
अब तौ उपाय एकौ चित्त में चढ़ै नहीं।
कैसी करौं, कहां जाऊँ, कासां कहौं, कोन सुनै,
कोऊ तौ निकासौ जासों दरद बढ़ै नहीं;
एरी मेरी बीर! जैसे तैसे इन आँखिन ते,
कढ़िगो अबीर पै अहीर को कढ़ै नहीं।

क्या किया जाय यह अहीर ऐसा ही है, जिनकी आँखों में एक बार घुसा वहाँ से फिर निकलना नहीं जानता—कोई कितनी ही चेष्टा क्यों न करे। और दर्द? भला उसे कैसे दूर किया जा सकता है? जो आँखें इतनी कोमल हैं, कि एक कंकड़ी के पड़ने से भी व्याकुल हो उठती हैं, उनमें जब सदा के लिए पूर्ण पुरुष ही घुस बैठा, तो उनके दर्द का सहन कैसे हो सकता है? साथ ही विलक्षणता तो यह है, कि इस दर्द में आनंद भी अपूर्व है।

इस छंद में तुल्ययोगिता अलंकार के साथ-साथ विप्रलंभ शृंगार का सुंदर विकास हुआ है।

जिस पुरुष को दो पत्नियाँ होती हैं, उनमें जिस पर उसका

अनुराग अधिक होता है उसे ज्येष्टा तथा जिस पर कम होत उसे कनिष्टा कहते हैं। दोनों पत्नियों को संतुष्ट करने में कभी-न नायक को छल का आश्रय लेना पड़ता है। पद्माकर ने अपने छंद में नायक का अपनी दोनों पत्नियों को छल से प्रसन्न करने सुंदर चित्रण किया है।

दोऊ छवि छाजती छबीली मिलि आसन पै,
जिनहिं बिलोकि रह्यो जात न जितै-जितै ;
कहै 'पदमाकर' पिछौहैं आइ आदर सों,
छलिया छबीली छैल वासर बितै-बितै।
मूँदै तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग,
सुदृग मिचाउनी कै ख्यालन हितै-हितै ;
नैसुक नवाइ ग्रीवा धन्य धन्य दूसरी को—
औचक अचूक मुख चूमत चितै-चितै।

कविवर 'देव' तथा 'भानु' ने भी ठीक इसी प्रकार का द अंकित किया है। यथा—

खेलत फागु खेलार खरे अनुराग भरे बड़े भाग कन्हाई
एक ही भौन में दोउन देखि कै 'देव' करी इक चातुरताई
लाल गुलाब सों लीन्हीं मुठी भरि बाल के गाल की ओर चलाई
वा दृग मूँदि उतै चितई इन भेंटी इतै वृषभानु की जाई
—;

केलि के मंदिर बैठी हुती दोऊ प्रेम भरी तहँ प्रीतम आयो
दोउन सों करिकै मधुरी बतियाँ अपने ढिग मैं बिठरायो

'भानु' सुगंध सुँघायवे के मिस एक के नैन कपूर लगायो ;
मींजन जौलौं लगी तब लौं हँसि दूजि को आपने अंक लगायो ।

—भानु ।

यद्यपि तीनों छंदो में प्रायः एक ही से भाव को व्यंजित किया गया है, किंतु देव तथा भानु के नायकों ने अपनी नायिका की दृष्टि बचाने में पद्माकर के नायक की अपेक्षा अधिक कठोर उपायों का आश्रय लिया है, जिससे उनके हृदय की अविदग्धता का परिचय मिलता है ; पर पद्माकर का नायक बड़ा चतुर है, उसने जिस स्वाभाविक कौशल से एक नायिका की दृष्टि पर परदा डाल दूसरी का मनोरंजन किया है, वह स्तुत्य है ।

पद्माकर जी ने एक स्वयं-दूतिका की अंतर अभिलाषा का अनुपम चित्र अंकित किया है :—

जब लौं घर को धनी आवै घरै तब लौं तो कहूँ चित दैबो करौ ;
'पद्माकर' ये बछरा अपने बछरान के संग चरैबो करौ ।
अरु औरन के घरते हमसों तुम दूनी दुहावनि लैबो करौ ;
नित साँझ सवेरे हमारो हहा हरि गैया भला दुहि जैबो करौ ।

नायिका ने नायक को अपने गृह पर आमंत्रित करने में कैसा मार्मिक अनुरोध उपरोध किया है ! साथ ही यह भी संकेत किया है, कि गृहस्वामी कहीं बाहर गया हुआ है, जितने दिन वह नहीं आता है, उतने दिन तो भला तुम आजाया करो । दूनी दुहावनी भी देने को कहा है और अपने हृदय की तप्त वियोग वह्नि को मिलन के शीतल जल से शांत कर जाने की तड़पती हुई प्रार्थना

भी की है। यह छंद पद्माकर की व्यंजनात्मक भाषा का एक उत्तम उदाहरण है।

एक दंपति की रति-दृढ़ता भी अवलोकनीय है :—

लै पट पीतम के पहिरै पहिराइ पियै चुनि चूनरि खासी ;
त्यौं 'पदमाकर' साँझ ही ते सिगरी निसि केलि-कला परकासी।
फूलत फूल गुलाबन के चटकाहट चौंक चकी चपला-सी ;
कान्ह के कानन आँगुरी लाय रही लपटाइ लवंग लता-सी।

रसखान ने भी अपने एक छंद में ऐसी ही रति-दृढ़ता दिखाई है।

प्रीतम संग प्रवीन प्रिया रस-केलि प्रसंगन मैं अनुरागी ;
चुंबन औ' परिरंभन के विपरीत विलासन मैं निसि जागी।
सेज परी बिलसै 'रसखानि' सबै सुख मानि हिए रस पागी ;
मोदमयी मुकतान के मंजुल काहे ते हार उतारन लागी।

दोनों हीं कवियों की नायिकाएँ केलि-कला-कुशला हैं। दोनों ही ने अपनी रति-प्रीति का दृढ़ परिचय दिया है। पद्माकर की नायिका का केलि-भवन गुलाब की वाटिका से संलग्न था, अतः, जिसमें प्रातःकालीन चटकाहट प्रीतम के कानों में न पड़े और उन्हें प्रभात का ज्ञान न हो, वह उनके कानों में उँगली डाल उनसे लिपट कर पड़ रही और रसखान की नायिका का केलि-भवन चाहे जहाँ हो, पर गुलाबों के फूलने की ऋतु नहीं थी; वह मुक्ताओं का हार पहने थी, मुक्ता प्रभात में शीतल पड़ जाते हैं, अतएव, उसने उस

हार को उतार कर पृथक रख दिया जिसमें उसकी शीतलता से प्रभात का ज्ञान प्रीतम को न हो। रसखान यद्यपि शिष्ट एवं सुष्ठु भाषा के प्रयोग के लिए प्रसिद्ध हैं, पर उक्त दोनों छंदो में पद्माकर की भाषा अपेक्षा कृत अधिक मधुर एवं प्रवाहमयी है; वर्णन-शैली भी संयत है।

एक वर्तमान सुरतसंगोपना का चित्रण करने में कवि ने अपना कौशल कमाल को पहुँचा दिया है।

भोर भयो जमुना-जल-धार में धाय धँसी जल-केलि की माती;
त्यों 'पदमाकर' पैंग चले उछले जब तुंग तरंग विघाती।
टूटे हरा छरा छूटे सबै सराबोर भई अँगिया रँग राती;
को कहतो यह मेरी दसा गहतो न गोविंद तो मैं वहि जाती।

नायिका ने अपने को कलंकित होने से अपनी सामयिक उक्ति-चातुरी से कितना स्पष्ट बचा लिया है।

जीवन के सत्य के समान संयोग और वियोग दोनों इसी संसार की तारतम्य बोधक उपभोग्य अवस्थाएँ हैं। जिस प्रकार भाव के बिना अभाव का, प्रकाश के बिना अंधकार का, सुख के बिना दुःख का, हर्ष के बिना विषाद का अस्तित्व नहीं रह सकता अथवा अनुभव नहीं हो सकता, उसी प्रकार संयोग और वियोग का भी पारस्परिक संबंध है। एक की स्थिति से दूसरे की स्थिति पुष्ट होती है। जो क्षुधित होता है, उसी को भोजन का

विप्रलंभ-शृंगार

आनंद मिलता है और जो भोजन का आनंद पा चुका होता है, उसी को क्षुधा के वास्तविक कष्ट का भी अनुभव होता है। जिसे क्षुधा लगी नहीं उसे भोजन का आनंद ही क्या? इसी प्रकार जो क्षुधा पिपासा में ही लालित-पालित हुआ है, उसे क्षुधा की उस तीव्रता का अनुभव भी नहीं हो सकता जो एक तृप्त व्यक्ति करता है। संयोग यदि सुखमय है, तो वियोग कष्ट का वह अग्निकुंड है, जो मानस-सीता को अपने ताप से शुद्ध कर संयोग-सुखोपभोग के योग्य बना देता है। इसके अतिरिक्त दार्शनिक दृष्टि से विचार करने पर, संयोग और वियोग दोनों में से किसी का आनंद भी कम नहीं है। संयोग में यदि प्रेम-क्रीड़ा का आनंद है, तो वियोग में भी स्मृति-क्रीड़ा एवं कल्पना-कौतूहल का वह आनंद है, जो किसी योगी को समाधि में ही प्राप्त हो सकता है। मानव-जीवन में संयोग और वियोग दोनों का ही अपना-अपना विशेष स्थान और महत्व है। इसी से आर्य-साहित्यकारों ने दोनों अवस्थाओं का समान वर्णन किया है।

वियोग का क्लेश कितना तीव्र होता है, इसका वास्तविक अनुभव तो भुक्त-भोगी ही को हो सकता है, पर जो भुक्त-भोगी नहीं है, उनके निकट शब्दों द्वारा उसकी तीव्रता का अनुभव कराना बड़ा कठिन है। इसी से कविजन प्रायः वियोग वर्णन में अतिशयोक्ति से काम लेते हैं। पर कुछ कवियों का यह अतिशयोक्ति-प्रयोग इतना अतिरंजित हुआ है, कि वह शृंगार-भाव का उद्रेक करने के स्थान पर आश्चर्य का ही उद्दीपक बन गया है।

पद्माकर का विरह-वर्णन भी इस दोष से निर्मुक्त नहीं है, परंतु अधिकांश में स्वभाव-सम्मत ही हुआ है। विरह-वर्णन के उल्लिखित दोष में भी कुछ पुराने रसिक आनंद का अनुभव करते हैं। अस्तु, दो एक छंद उसी शैली के लिखकर हम पद्माकर के स्वाभाविक वर्णनों की ही आलोचना करेंगे।

बरसत मेह अछेह अति, अवनि रही जल पूरि ;
पथिक तऊ तुव गेह तें, उठत भभूकन धूरि।

कोई दूती किसी पथिक से कह रही है—हे पथिक, वर्षा के कारण यद्यपि समग्र पृथिवी जल-मग्न हो गई तथापि तुम्हारे गृह में विरहिणी बाला की अनुतप्त अवस्था के कारण धूल ही उड़ा करती है अर्थात् नायिका की विरहाग्नि का ताप इतना प्रबल है, कि उस गृह पर वर्षा के जल का कोई प्रभाव ही नहीं है। हो कैसे? पद्माकर के मनोविज्ञान के अनुसार तो विरहाग्नि में जल तेल का काम करता है। विरह को उत्तेजित करता है, शांत नहीं। यथा:—

ज्यों-ज्यों बरसत घोर घन, घन घमंड गरुवाइ ;
त्यों-त्यों परति प्रचंड अति, नई लगन की लाइ।

पद्माकर की इस बाला की विरहाग्नि के सम्मुख बिहारी की उस बाला की विरहाग्नि मंद सी प्रतीत होती है, जिसके लिए उन्होंने लिखा है कि:—

औंधाई सीसी सुलखि, विरह बरी बिललात ;
बीचहिं सूखि गुलाब गौ, छीटों छुई न गात।

झारैंगे अँगारे ये तरनि-तारे तारापति,
जारैंगे खमंडल में आग मढ़ जायगी ;
काहू विधि विधि की बनावट बचैगी नाहिं,
जो पै वा वियोगिनी की आह कढ़ जायगी।

मीर तकी ने कहा है—

करूँ जो आह ज़मीं वो ज़माँ जल जाय।
सपहरे-नीली का यह सायवाँ जल जाय।

अर्थात् यदि मैं आह करूँ तो पृथ्वी और उस पर के संपूर्ण जीव जंतु जल जाँय इतनाही नहीं ऊपर जो यह नील आकाश का चँदोवा टँगा है, वह भी जल कर क्षार हो जाय।

हिंदी, संस्कृत, उर्दू और फारसी के प्रायः सभी कवियों ने वियोग का ऐसाही अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया है।

पश्चिमी कवियों के विरह-वर्णन की प्रवृत्ति पूर्वी कवियों की अपेक्षा उत्तम कही जा सकती है। उन्होंने भी अतिशयोक्ति से काम लिया है, पर स्वाभाविकता की हत्या नहीं होने दी है। उदाहरणार्थ कविवर कीटस (J. Keats) की करुणाहीना सुंदरी (La belle dame sans merci) नामक कविता से एक छंद यहाँ पर दे रहे हैं:—

"I see a lily on thy brow
with anguish moist and fever dew,
And on thy cheeks a fading rose
Fast withereth too"

अपने ( नायक ) विरह-विधुर आनन का चित्रण करते हुए कीट्स ने लिखा है, कि मैं तेरे भाल पर अत्यंत तीव्र वेदना के घर्म से सिक्त एवं ज्वर-जल-बिंदु युक्त कुमुदिनी-पुष्प को देखता हूँ और तेरे कपोलों पर सर्वथा म्लान गुलाब पुष्पों को। कितना सादा और स्वाभाविक वर्णन है! जलसिक्त कुमुदिनी और म्लान गुलाब इन्हीं दो सहज उपायों के द्वारा कवि ने जैसे नायक की वाह्य एवं आभ्यांतरिक अवस्था को प्रत्यक्ष कर दिया है। Fading rose ( मुरझाए हुए गुलाब ) के साथ Fast withereth too (सर्वथा म्लान ) विशेषण जोड़कर नायक की अत्यंत कृशावस्था को दिखलाने की ही चेष्टा की गई है और प्रकारांतर से यह अतिशयोक्ति का ही आश्रय लेना हुआ है, किंतु यह प्राच्य कवियों के विरह की प्रलयाग्नि, आँसुओं के सागर आदि विशेषणों एवं उपमाओं के समान अरुचिकर न होकर काव्य के सौंदर्य को वर्धमान और नायक की अवस्था को मूर्तिमान करने में ही सहायक हुआ है।

आई तजि हौं तो ताहि तरनि तनूजा तीर,
ताकि-ताकि तारापति तरफति ताती सी ;
कहै 'पद्माकर' घरीक ही में घनस्याम'
काम तौ कतलबाज कुंजन है काती सो।
याही छिन वाही सों न मोहन मिलौगे जो पै,
लगन लगाइ एती अगिनि अवाती सी ;
रावरी दुहाई तौ बुझाई न बुझैगी फेरि,
नेह भरी नागरी की देह दिया बाती सी।

पद्माकर का यह विरह-वर्णन काव्य-कला की दृष्टि से अच्छा हुआ है। नेह शब्द श्लिष्ट और चमत्कार पूर्ण है। श्लेष द्वारा समर्थित 'दिया बातीसी नागरी का देह' का अर्थ ग्रहण करने से काव्य-लिंग अलंकार * होता है, इसके साहचर्य से विप्रलंभ शृंगार का जैसा सुंदर विकास हुआ है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। छेकानुप्रास का उल्लेख व्यर्थ होगा, कारण वह पद्माकर के काव्य में सर्वत्र व्यापक है और उसके वे मास्टर हैं।

इस विरह-वर्णन में नागरी की उपमा दिया-बाती से बहुत ही उत्तम बन पड़ी है। दिये की बत्ती जिस प्रकार आपही आप जलते जलते नष्ट हो जाती है, विरही प्राणी का शरीर भी उसी प्रकार वियोग-वह्नि में दग्ध होकर धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है। आत्माहुति की प्रवृत्ति या Self-consuming zeal का होना ही सच्चे विरह का स्वरूप है। इसी से कोई प्रेमी प्रार्थना करता है, कि इस प्रवृत्ति का जितना वेग उसमें है, उसका कुछ अंश उसकी प्रेमिका में भी आ जाय।

Then haste, kind goodhead and inspire
A portion of your sacred fire;
To make her feel
That self-consuming zeal,

---

* जहाँ युक्ति से अर्थ का समर्थन होता है वहाँ काव्य-लिंग अलंकार का आरोप होता है।

पूर अँसुवान को रह्यो जो पूरि आँखिन में,
चाहत बह्यो पै बहि बाहरै बहै नहीं ;
कहै 'पदमाकर' सु धोखेहू तमाल तरु,
चाहत गह्योई पै है गहत गहै नहीं ।
काँपि कदली लौं या आली कौ अवलंब कहूँ,
चाहत लह्यो पै लोक लाजन लहै नहीं ;
कंत न मिले को दुख दारुन अनंत पाय,
चाहत कह्यो पै कछु काहू सों कहै नहीं ।

एक ओर लोक-लज्जा दूसरी ओर विरह-वेदना दोनों के शासन में पड़कर अबला बाला का बुरा हाल है। हृदय रो रहा है, पर उसे प्रकट करने में लज्जा बाधक है। संभवतः उसकी उस अंतर्व्यथा से कोई सहानुभूति प्रकट करनेवाला भी नहीं है। वह अपने आँसुओं का घूँट आप ही पीकर रह जाती है। कितनी दयनीय अवस्था है।

"इक मीन बिचारो बिध्यो बनसी,
पुनि जाल के जाय दुमाले पस्यो ;
मन तो मनमोहन के सँग गो,
तन लाज मनोज के पाले पस्यो।"

ऐसे कुसमय में Tennyson की Mariana के समान उसका यह सोचना ही स्वाभाविक होगा:—

"............My life is dreary ;
He cometh not.................. ;

.........I am aweary, aweary,

I would that I were dead."

तोप तथा विहारी ने भी अपने मुक्तकों में कुछ ऐसी ही अवस्था के चित्रण करने की चेष्टा की है।

> प्रीतम को हितपौन गहि, लिए जाति तेहि संग ;
> गहि डोरी कुल लाज की, भई चंग के रंग।

—तोषनिधि।

> नई लगन कुल की सकुच विकल भई अकुलाय ;
> दुहूँ ओर ऐंची फिरै फिरकी लौं दिन जाय।

—बिहारी।

तोष तथा विहारी दोनों ही की नायिकाओं की अंतर्व्यथा पद्माकर की नायिका की अपेक्षा अधिक खुल गई है। वे कुल संकोच की अपेक्षा प्रियतम-प्रेम की ओर ही अधिक आकृष्ट प्रतीत होती हैं। तोष की नायिका की आत्मा कवि की अतिरिक्त कला में पड़कर इतनी निर्बल हो गई है, कि वह अपनी दुरवस्था के प्रति हमारी सहानुभूति प्राप्त करने में सर्वथा असमर्थ है। विहारी की नायिका का अधैर्य, नई लगन के होते हुए भी अनंत प्रेम का परिचायक है। तोष की अपेक्षा उनका वर्णन भी स्वाभाविक है। किंतु पद्माकर की अनुभूति भारतीय लोक-मार्यादा के अनुरूप बड़ी विदग्धतापूर्ण हुई है। पद्माकर की ऐसी काव्य-सूक्तियों को देखकर कहना पड़ता है, कि वे जीवन की प्राकृतिक व्याख्या (Naturalistic interpretation of life) में बहुत ही प्रवीण हैं।

कोई ब्रजबाला ऊधो को संदेश दे रही है—

> बरसत मेह नेह सरसत अंग-अंग,
> झरसत देह जैसे जरत जवासो है;
> कहै 'पदमाकर' कलिंदी के कदंबन पै,
> मधुपन कीन्हों आय महत मवासो है।
> ऊधो यह ऊधम जताइ दीजो मोहन को,
> ब्रज को सुबासो भयो अगिन अवासो है;
> पातकी पपीहा जलपान को न प्यासो, काहू
> व्यथित वियोगिनी के प्रानन को प्यासो है।

वर्षा की पट-भूमि ( Back ground ) पाकर विरह का चित्र जैसे खिल उठा है। वर्षा ऋतु में जिस प्रकार जवासा जड़ मूल से जल जाता है, विरहिणी का शरीर भी उसी प्रकार विरह-वह्नि में संतप्त हो रहा है। इधर शरीर दग्ध हो रहा है, उधर कालिंदी के तट के कदंब वृक्षों पर भ्रमरों ने मोर्चाबंदी की है और इन सबसे बढ़ कर पातकी पपीहा पानी का प्यासा न होकर किसी व्यथा-व्याकुल वियोगिनी के प्राण के लिए तृषित हो रहा है। कैसी हृदय विदारक अवस्था है! ऐसी ही किसी वियोगिनी को देखकर कवि ने कहा है—Love is a spirit all compact of fire. अर्थात् प्रेम ज्वालामय है। इस दावाग्नि से राम जैसे श्रेष्ठ वीर भी विचलित होकर कहने लग गए थे—'घन घमंड गरजत नभ घोरा, प्रिया-हीन डरपत मन मोरा।' इस दशा में उस अबला की रक्षा श्यामसुंदर के बिना और कौन कर सकता है?

पद्माकर के पपीहे के समान किसी ने दादुर को लक्ष्य करके कहा है:—

सोर मचाय के दादुर मूढ़,
जरे पर लोन लगावत हैं;
पीतम सों बिछुरी जो तिन्हैं,
वध को जनु ढोल बजावत हैं।

इस युक्ति की अपेक्षा पद्माकर की उक्ति अधिक प्रतिभा संपन्न है:—

प्रानन के प्यारे तन-ताप के हरनहारे,
नंद के दुलारे ब्रजवारे उमहत हैं;
कहै 'पदमाकर' उरूझे उर अंतर यों,
अंतर चहेहूँ ते न अंतर चहत हैं।
नैनन बसे हैं, अंग-अंग हुलसे हैं, रोम—
रोमनि रसे हैं, निकसे हैं को कहत है?
ऊधौ वे गोविंद कोऊ और मथुरा में यहाँ,
मेरे तो गोविंद मोंहि-मोंहि में रहत है।

प्रेम और विरह की वह अवस्था, जिसमें प्राणी अपने और अपने प्रेमी के अंतर को भूल कर न केवल अपने ही रोम-रोम में वरन सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में अपने ही प्रेम-पात्र की मनोहर मूर्ति का दर्शन करता है और उसी में तन्मय हो जाता है, बड़ी ही तृप्ति कर होती है। उस समय विरह अथवा प्रेम-तृष्णा

की अनंत ज्वाला से शांति का एक ऐसा सुधा-स्रोत उत्पन्न होता है, जिसमें अवगाहन कर अंतर्देवता का प्राण शीतल और अनंत आनंद में निमग्न हो जाता है। यही समाधि है, यही ब्रह्मानंद है। उपर्युक्त छंद में पद्माकर ने राधा की इसी अवस्था का वर्णन किया है। वर्णन में जैसी उनकी तल्लीनता दिखाई गई है, परमात्मा करें वह प्रत्येक विरही प्राणी को प्राप्त हो।

पद्माकर के इस भाव-चित्र से अनेक कवियों की कल्पना का सादृश्य पाया जाता है।

जो न जी में प्रेम तब कीजे व्रत नेम, जब
कंज मुख भूलै तब संजम बिसेखिए;
आस नहीं पीकी तब आसन ही बाँधियत,
सासन कै सासन को मूँदि पति पेखिए।
नख ते सिखा लौं जब प्रेममयी बाम भई,
बाहिर लौं भीतर न दूजो 'देव' देखिए;
जोग करि मिलै जो वियोग होय बालमजू,
ह्याँ न हरि होंय तब ध्यान धरि देखिए।

—देव।

निसि दिन स्रौनन पियूप-सों पियत रहै,
छाय रह्यो नाद बाँसुरी के सुर-ग्राम को;
तरनि-तनूजा-तीर, वन, कुंज, बीथिन मैं,
जहाँ-तहाँ देखियत रूप छबि-धाम को।

कवि 'मतिराम' होत हाँतो ना हिए तैं नेक,
सुख-प्रेम गात को परसि अभिराम को;
ऊधौ तुम कहत वियोग तजि जोग करौ,
जोग तब करैं जो वियोग होय स्याम को।
—मतिराम।

My beloved is ever in my heart,
That is why I see him every where,
He is in the pupils of my eyes,
That is why I see him every where,
I went far away to hear his own words,
But, ah, it was vain !
When I came back I heard them
In my own songs.
Who are you to see him like a beggar
from door to door ?
Come to my heart and see his face in
the tears of my eyes !"
—Rabindra Nath.

मेरे प्रियतम सर्वदा मेरे हृदय में निवास करते हैं, इसी से मैं उन्हें सर्वत्र देखता हूँ। वे मेरी आँखों की पुतलियों में रहते हैं, इसी से मैं उन्हें सर्वत्र देखता हूँ। मैं दूर देश में उनकी वाणी सुनने के लिए गया। परंतु आह, वह व्यर्थ ही था। जब मैं लौट

कर आया तो अपने ही संगीत में उसे सुना। तुम कान हो जो उन्हें भिखारी की भाँति घर घर ढूढ़ रहे हो? आओ मेरे आँसुओं में उनकी मधुर मूर्ति का दर्शन करो।

A two fold existence
I am where thou art;
My heart in the distance
Beats close to thy heart.
Look up, I am near thee
I gaze on thy face;
I see thee, I hear thee
I feel thine embrace

—Lord Lytton.

पृथक रहते हुए भी मैं तुम्हारे ही साथ हूँ। दूर रहने पर भी मेरा हृदय तुम्हारे ही हृदय के साथ है। देखो, मैं तुम्हारे निकट, तुम्हारे मुख मंडल को देखता हूँ, तुम्हें देखता हूँ, तुम्हें सुनता हूँ और तुम्हारे ही आलिंगन का अनुभव करता हूँ।

Here lies the body of Ellen Adair
And here the heart of Edward Gray.

—A. Tennyson.

उक्त सभी काव्यों में प्रेमी और प्रेमिका के ऐक्य-संबंध को प्रदर्शित किया गया है। देव का काव्य संयत और तर्क युक्त हुआ है,

मतिराम के काव्य में तर्क की अपेक्षा प्रेम का आधिक्य है, रवींद्र-नाथ की पंक्तियों में प्रेम की तल्लीनता और आध्यात्मिकता का आवेश है, लार्ड लिटन के छंदों में भावानुभूति की तीव्रता है और टेनिसन के वृत्तार्ध में है लुटे हुए प्रेमी हृदय की समाधि। किंतु पद्माकर के काव्य में जैसी तीव्र सम्वेदना, तन्मयता या भावलीनता पाई जाती है वह उक्त किसी काव्य में नहीं है।

प्राकृतिक-सौंदर्य का वर्णन

हमारे यहाँ साहित्य में प्रकृति के सौंदर्य्य का शुद्ध या स्वतंत्र वर्णन वहुत कम पाया जाता है। मानव-हृदय के घात-प्रतिघात को विस्पष्ट करने के लिए पटभूमि ( Back ground ) के रूप में प्राकृतिक सौंदर्य को अंकित करना ही प्राच्य साहित्यकारों की प्रवृत्ति है। यही कारण है, कि हमारे प्राचीन साहित्य में मानव-हृदय-स्पंदन के साथ-साथ प्राकृतिक दृश्य अपना नृत्य-वैभव प्रदर्शित करते हैं। संस्कृत अथवा प्राचीन हिंदी कवियों के प्रकृति-वर्णन की तुलना किसी अंश में पाश्चात्य कवि विलियम मैरिस के प्रकृति वर्णन से की जा सकती है। प्रकृति और मानव-हृदय का कुछ ऐसा सान्निध्य है, कि जब एक में परिवर्त्तन होता है तो दूसरे में भी उसी के साथ परिवर्त्तन उपस्थित होता है। वसंत के समागम से जब प्रकृति रंगीन पुष्पों से सज्जित हो कोकिल कंठ से आलाप लेती है, तो मानव-हृदय भी एक अभिनव आनंद से नृत्य कर उठता है। इसी प्रकार जब मानव-हृदय किसी विरह-वेदना से परिपूर्ण रहता है, तो प्रकृति भी

जैसे रोती हुई दृष्टिगत होती है। संतो ने प्रकृति के ऋतु-परिवर्त्तन में निस्सारता का दृश्य देखा, तुलसीदास जी ने उसमें नीति की शिक्षा पाई और शृंगारी कवियों ने उसमें काम के उल्लास अथवा पीड़ा का अनुभव किया है। पद्माकर के ऋतु-वर्णन शृंगारी कवियों के अनुकूल हुए हैं। एक छंद में उन्होंने भेदातिशयोक्ति अलंकार की सहायता से वसंत का अच्छा उल्लास दिखाया है :—

> औरै भाँति कुंजन में गुंजरत भौंर भीर,
> औरै भाँति बौरन के झौरन के ह्वै गए;
> कहै 'पदमाकर' सु औरै भाँति गलियानि,
> छलिया छबीले छैल औरै छवि छ्वै गए।
> औरै भाँति विहँग समाज में अवाज होत,
> ऐसे ऋतुराज के न आजु दिन द्वै गए;
> औरै रस, औरै रीत, औरै राग, औरै रंग,
> औरै तन, औरै मन, औरै वन ह्वै गए।

वसंतांतर्गत ही होली का वर्णन होता है। होली पर पद्माकर की अनेक उत्तम रचनाएँ मिलती हैं। सबका इस स्थल पर देना तो असंभव ही है, पर एक छंद हम यहाँ पर दे रहे हैं। व्रज बालाएँ होली में लज्जाहीन सी तो हो ही जाती हैं। एक स्त्री की लज्जा खो गई है। उसे वह ढूँढ़ रही है। इसी का चित्रण निम्न छंद में किया गया है। इसकी वर्णन-शैली बहुत ही सजीव है।

फहर गई धौं फबे रंग के फुहारन में,
कैधौं तराबोर भई अतर अपीच में;
कहै 'पदमाकर' चुभी सी चारु चोवन में,
उलथि गई धौं कहूँ अगर उलीच में।
हाय इन नैनन ते निकरि हमारी लाज,
कित धौं हेरानी हुरिहारन के बीच में;
उलझि गई धौं कहूँ उड़त अबीर रंग,
कचर गई धौं कहूँ केसर के कीच में।

पद्माकर ने वर्षा और हिंडोरे के अनेक चित्र अंकित किए हैं और उनमें से अधिकांश सजीव एवं स्वाभाविक उतरे हैं। वर्षा-काल का एक शुद्ध वर्णन नीचे दिया जाता है:—

मल्लिकन मंजुल मलिंद मतवारे मिले,
मंद-मंद मारुत मुहीम मनसा की है;
कहै 'पदमाकर' त्यों नदन नदीन नित,
नागर नवेली की त्यों नजर नसाकी है।
दौरत दरेरो देत दादुर सु दूँदै दीह,
दामिनी दमंकत दिसान में दसा की है;
बद्दलन बुंदन विलोक बगुलान बाग,
बँगलान बेलिन बहार बरषा की है।

राधा-श्याम की झूले की झांकी भी अवलोकनीय है।

सावन तीज सुहावन को सजि, सोहैं दुकूल सबै सुखसाधा;
त्यों 'पदमाकर' देखे बनै, कहते न बनै अनुराग अगाधा।

प्रेम के हेम-हिंडोरन में, सरसैं बरसैं रस रंग अगाधा;
राधिका के हिय झूलत साँवरो, साँवरे के हिय झूलति राधा।

पद्माकर के प्रकृति-वर्णन में वर्षा और वसंत का वर्णन उत्तम हुआ है। इस क्षेत्र में रीतिकालीन कवियों में सेनापति को छोड़ कर कदाचित ही कोई दूसरा कवि उनकी स्वाभाविकता एवं सजीवता को पा सके।

शरत्काल में गोपाल के रासमंडल का दर्शन कीजिए:—

खनक चुरीन की त्यों ठनक मृदंगन की,
रुनुक झुनुक सुर नूपुर के जाल को;
कहै 'पदमाकर' त्यों बाँसुरी की धुनि मिलि,
रह्यो बँधि सरस सनाको एक ताल को।
देखत बनत पै न कहत बनैरी कछू—
विविध विलास यों हुलास यह ख्याल को;
चंद छविरास चाँदनी को परकास—
राधिका को मंद हास रासमंडल गोपाल को।

हेमंत तथा शिशिर-काल में पुरुष को किन-किन पदार्थों की आवश्यकता होती है उसका ब्योरा दिया है:—

अगर की धूप मृग-मद की सुगंध वर,
बसन विसाल जाल अंग ढाँकियतु है;
कहै 'पदमाकर' सु पौन को न गौन जहाँ,
ऐसे भौन उमँगि-उमँगि छाकियतु है।

भोग औ' सँजोग हित सुरत हिमंत ही में,
एते और सुखद सहाय चाकियतु हैं;
तान की तरंग तरुनापन तरनि—तेज,
तेल तूल तरुनि तमोल ताकियतु हैं।
गुलगुली गिलमैं, गलीचा हैं, गुनीजन हैं,
* चाँदनी है, चिक है, चिरागन की माला है;
कहै 'पदमाकर' त्यों गजक गिजा है सजी,
सेज है, सुराही है, सुरा है और प्याला है।
सिसिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं,
जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं;
तान तुक ताला है, विनोद के रसाला है,
सुवाला है, दुसाला है, विसाला चित्रमाला है।

हिंदी के श्रृंगारी कवियों के ऋतु-वर्णन प्रायः इसी प्रकार के हुए हैं। पद्माकर के परवर्ती ग्वाल, नाथ, मंजु आदि कवियों ने, लोकप्रिय होने के कारण उनकी शैली को बड़ी तल्लीनता से अपनाया है।

श्रृंगार-काव्य के पाश्चात पद्माकर का ज्ञान, वैराग्य और भक्ति-काव्य सार्थक हुआ है। यौवन के आवेश में तथा राजाओं को रिझाने के उद्देश्य से उन्होंने श्रृंगारात्मक काव्य की रचना की थी। किंतु अवस्था ढलने पर 'पेट के लोभ लपेट में' दर-दर भटक चुकने पर रोग-ग्रस्त अवस्था में, जब उन्हें कहीं आश्रय अथवा 'विश्राम का धाम'

भक्ति प्रधान काव्य

* बिस्तर पर बिछाने की चादर।

न मिला तो उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हुआ, उन्होंने मन ही मन प्रश्न करके देखा कि 'को किहि को सुत, को किहि को पितु, कौन को को ती, कौन को को जग ठाकुर-चाकर' इत्यादि उन्हें उत्तर मिला कि संसार में कोई किसी का नहीं है, इसके साथ ही उन्होंने अनुभव किया कि 'बैस बिसासिनि जाति वही उमही छिनही छिन गंग की धार सी, बार पके थके अंग सबै मढ़ मीच गरेई परी हर-हार सी' ऐसी अवस्था में राम नाम के रसायन और गंगा-सेवन द्वारा उन्होंने अपने तन मन और वाणी को पवित्र करनाही उचित समझा। पद्माकर की इस समय की रचनाएँ आत्मानुभूति और भक्ति के उच्छ्वास से पूर्ण हैं। उनमें कवि के जीवन का सच्चा अनुभव और अपने उपास्य के प्रति अटल विश्वास पाया जाता है। यह सत्य है, कि पद्माकर की आत्मानुभूति कबीर या तुलसी के सदृश गंभीर नहीं हैं, किंतु जो कुछ भी है उसी में लोकोत्तर सौंदर्य का प्रतीक पाया जाता है, वह सौंदर्य हिंदी के कुछ चुने चुनाए भक्त कवियों में ही मिल सकता है। पद्माकर के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है, कि उन्होंने जिस विषय पर भी कुछ लिखा है, वे उसके सौंदर्य में जैसे तल्लीन हो गए हैं। उनके जैसी सौंदर्य-तल्लीनता हिंदी के बहुत कम कवियों में पाई जाती है। कीट्स Keats का सिद्धांत है कि—

Beauty is truth and truth is beauty,
That is all ye know on earth,
And all ye need to know.

पद्माकर के सभी प्रकार के काव्यों में अनेकांश में इस सिद्धांत का प्रतिपालन पाया जाता है।

वार्धक्यकाल में रोगग्रस्त अवस्था में पद्माकर ने अपने को बहुत ही असहाय स्थिति में पाया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि उनकी शरीर रूपी जर्जर नौका प्रलय कालीन तूफान में पड़ गई है और डूबा ही चाहती है। यथा :—

प्रलय पयोनिधि लौं लहरैं उठन लागीं,
लहरा लग्यो त्यों होन पौन पुरवैया को ;
भीर भरी झाँझरी विलोकि मझधार परी,
धीर न धरात 'पदमाकर' खेवैया को।
कहा वार कहा पार जानी है न जात कछु,
दूसरो दिखात न रखैया और नैया को ;
वहन न पैहै घेरि घाटहि लगैहैं, ऐसो
अमित भरोसो मोहि मेरे रघुरैया को।

तूफान में पड़ी नौका के डूबने उतराने के इस रूपक को अनेक भक्त कवियों ने अंकित किया है जिनमें से कुछ यहाँ पर दिए जाते हैं :—

पार कैसे को जैहै री नदिया अगम अपार।
गहिरी नदिया नाव पुरानी खेवनहार गवाँर।
निसि अँधियारी सोइ मतवारो जाके कर पतवार।
काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ बहु मच्छ, मगर, घरियार।
सिंधु-सुता जग-मातु विना अब कोउ न बचावनहार।
—काशीप्रसाद।

नैया मेरी तनक सी, बोझी पाथर भार ;
चहुँदिसि अति भौंरे उठत, केवट है मतवार।
केवट है मतवार नाव मझधारै आनी ;
आँधी उठत उदंड ताहु पै बरसै पानी।
कह 'गिरिधर' कविराय नाथ हौ तुम्हीं खेवैया ;
उठै दया को डाड़ घाट पै आवै नैया।

—गिरधर।

× × × ×

अब शिव पार करो मेरी नैया।
औघट घाट महा जल बूड़त बल्ली लगै न खेवैया।
वारि बरोबर वारि रह्यो है तापर अति पुरवैया।
थरथरात कंपत हिय मेरो शिव की देत दुहैया।
देवि सहाय प्रभात पुकारत शिव पितु गिरिजा मैया।

—देवी सहाय।

× × × ×

डगमग डोलै दीनानाथ, नैया भवसागर में मेरी।
मैंने भर-भर जीवन भार,
छोड़े तन बोहित बहु बार,
पहुँचा एक नहीं उस पार यह भी काल चक्र ने घेरी।
मुड़का मेरु दंड पतवार,
कर पग पाते चले न चार,
सकुचा मन-माँझी हिय हार पूरी दुर्गति रात अँधेरी।
ऊले अघ झख नक्र भुजंग,
झटके पटके ताप तरंग,
तरती कर्म पवन के संग जाडो भरती है चक्र फेरी।

ठोकर मरणाचल की खाय,
फटकर डूब जायगी हाय,
शंकर अब तो पार लगाय तेरी मार सही बहुतेरी।
—शंकर।

काशीप्रसाद जी की विपत्ति में उनकी सिधुसुता ही अंतिम आधार हैं; गिरिधर और देवी सहाय जी के काव्य में अपने इष्टदेव के प्रति कातर प्रार्थना है; शंकर जी का काव्य सादगी से दूर है उसमें आध्यात्मिक भावना के साथ पूर्ण रूपक अलंकार का निर्वाह किया गया है और पद्माकर के काव्य में उनके रघुरैया उनके अंतिम आधार हैं। उनके प्रति यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से नहीं किंतु परोक्ष रूप से कातर प्रार्थना भी है और सब से बढ़ कर है आध्यात्मिक भावावेश के साथ अपने इष्टदेव की शक्ति और उदारता में अटल विश्वास। ऐसा ढूँढने पर ही किसी परम-भक्त की वाणी में मिल सकेगा। उनकी वर्णन-शैली में प्रवाह और भावलीनता पिछले किसी भी छंद से कहीं अधिक है। शैली में प्रवाह और भावलीनता पद्माकर के काव्य का प्रधान गुण है। इस काव्य में तूफान के मूर्तिमान चित्रण को देखकर James Thomson के Storm का स्मरण आता है:—

Mean time the mountain billows to the clouds
In dreadful tumult swell'd surge above surge
Burst into chaos with tremendous roar
And anchor'd navies from their station drive

Wild as the winds across the howling waste
Of mighty waters: now the enfleted wave
Straining they scale, and now empetous shoot
Into the secret chambers of the deep
The wintery Baltic thundering o'er their head
Emerging thence again before the breath
Of full exerted Heaven they wing their course
And dart on distant coasts if some sharp rock
Or shoal fragments fling their floating round.

थामसन के काव्य में प्रकृति के रौद्र रूप का दर्शन मिलता है ; वह संहारकारिणी बन कर ही उपस्थित हुई है। नीचे पर्वताकार लहरों का हुँकार और आंदोलन, ऊपर विद्युत का वज्र निर्घोष—स्थानच्युत जल-पोत की शक्ति कितनी जो इस प्रलयकारी परिस्थिति का सामना कर सके ! वह तो लहरों के वशीभूत होकर उन्हीं की कृपा पर टिका हुआ है—अभी अभी है अभी नहीं। भविष्य अंधकारमय निराशा परिपूर्ण ! किंतु पद्माकर की भीर भरी झाँझरी यद्यपि प्रलय-पयोनिधि सदृश लहरों में ही पड़ी हुई है और खेवैया का धैर्य छूट गया है, परंतु खुरैया की शक्ति पर पूर्ण विश्वास है, वह पार लग कर ही रहेगी। भयानक स्थिति के Back ground और उज्ज्वल आशा के प्रकाश में भक्त-हृदय का विश्वास एक दम खिल गया है।

एक स्थल पर कृष्ण की बाल-छवि अंकित करते हुए लिखा है:—

देखु 'पदमाकर' गोविंद की अमित छवि,
संकर समेत विधि आनँद सो बाढ़ो हैं ;
भिभिकत भूमत मुदित मुसकात गहि
अंचल को छोर दोउ हाथन सो आढ़ो है ;
पटकत पाँव होत पैजनी भुनुक रंच,
नेक नेक नैनन ते नीर कन काढ़ो हैं ;
आगे नंदरानी के तनिक पय पीवे काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठुनुकत ठाढ़ो है ।

कितना सजीव चित्रण है ! वात्सल्य रसका ऐसा अपूर्व स्रोत हिंदी साहित्य में कचित ही देखने को मिलेगा । कम से कम हमने तो इस जोड़ का छंद दूसरा नहीं पाया । ऐसा चित्रण कोई भक्त ही कर सकता है । इसीसे मिलता-जुलता सूरदास का रचना कौशल देखिए ।

तनिक दैरी माइ, माखन तनिक दैरी माइ ।
तनिक कर पर तनिक रोटी माँगत चरन चलाइ ।
तनक भूपर रतन रेखा नेक पकस्यो धाइ ।
कंपि आगिरि शेप शक्यो उदधि चलो अकुलाइ ।
जासु मुख ब्रह्मादि लोचैं मांगै सो ललचाइ ।
ईस वेगहि दरस दीजै व्रज-बाल लेत बलाइ ।
माँखन-माँगत स्यामसुंदर देत पग पटकाइ ।
तनक मुख की तनक बतियाँ माँगत हैं तोतराइ ।

मेरे मन को तनिक मोहन लागु मोहि बलाइ।
स्यामसुँदर गिरिधरनि ऊपर 'सूर' बलि-बलि जाइ।

सूर और पद्माकर दोनों ही ने प्रायः श्यामसुंदर की एक ही अवस्था का चित्रण किया है। किंतु यह कहनाही पड़ेगा, कि इस स्थल पर पद्माकर का वर्णन जैसा स्पष्ट हुआ है और उसमें जैसा रस-परिपाक हो सका है, वह सूर के पद में नहीं है।

मानव-जीवन की सार्थकता के संबंध में पद्माकर जी की उक्ति स्मरणीय है। यथा:—

आयो मन हाथ तब आयबो रह्यो न कछु,
भायो गुरु-ज्ञान फेर भायबो कहा रह्यो ?
कहै 'पदमाकर' सुगंध की तरंग जैसे,
पायो सत ज्ञान फेर पायबो कहा रह्यो ?
दान बलवान बल विविध वितान बल,
छायो जस पुंज फेर छायबो कहा रह्यो ?
ध्यायो राम रूप तब ध्यायबो रहयो न कछु,
गायो राम नाम तब गायबो कहा रहयो ?

वास्तव में यदि किसी प्राणी को ये सब बातें प्राप्त हो जाँय तो उसके लिए फिर इस त्रैलोक्य में दुर्लभ ही क्या है ?

राम की भक्त-वत्सलता और उनके अधमोधारकत्व पर पद्माकर का पूर्ण विश्वास था। वे अपने मन में इस बात को भली भाँति समझ गए थे, कि राम अपने सरल स्वभाव के कारण अधम से

अधम व्यक्ति को भी सद्गति प्रदान करते हैं अन्यथा लंका का राक्षस-दल जिसका कुकृत्य संसार-प्रसिद्ध था, कैसे सुरलोक का अधिकारी होता ? राम के इस विचित्र स्वभाव को देखकर उन्होंने अपने में सभी सुप्रसिद्ध पापियों का आरोप कर बड़े ही मार्मिक ढंग से अपने एक कवित्त में सद्गति की अभिलाषा प्रकट की है। यथा :—

अगुन अनंत खरदूखन लौं दोखवंत,
तुच्छ त्रिसिरा लौं जाको एकहू न जस है ;
कहै 'पदमाकर' कबंध लौं मदांध महा,
पापी हौं मरीच लौं न दाया को दरस है।
मंथरा लौं मंथर कुपंथी पंथ-पाहन लौं,
बालि हूँ लौं बिषयी न जान्यौ और रस है ;
ब्याध हूँ लौं बधिक बिराध लौं बिरोधी राम !
एते पै न तारो तौ हमारो कहा बस है ?

अपने इष्टदेव द्वारा सुप्रसिद्ध पापियों के उद्धार का उल्लेख कर अनेक कवियों ने अपने लिए सद्गति की प्रार्थना की है, किंतु जिस प्रभावोत्पादक ढंग से पद्माकर ने अपनी बात कही है, वह सर्वथा उनका अपना है। राम के सरल स्वभाव का परिचय पाकर उनका स्मरण करना और दूसरों को उनका स्मरण करने का उपदेश देना ही उन्होंने अंतिम अवस्था अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। यथा :—

आनंद के कंद जग ज्यावत जगत वृंद,
दशरथ-नंद के निवाहे ही निबहिए;
कहै 'पदमाकर' पवित्र पन पालिवे को,
चौरे चक्र पानिके चरित्रन को चहिए।
अवध विहारी के विनोदन में वीथि-बीथि,
गीधा गुह गीधे के गुनानुवाद गहिए;
रैन दिन आठो जाम राम राम राम राम,
सीताराम सीताराम सीताराम कहिए।

कितनी तल्लीनता और विश्वास के साथ राम-स्मरण का उपदेश दिया गया है!

पद्माकर जी अपने पापों को बहुत प्रवल समझते थे, पर गंगा की महिमा से अवगत होकर उनका मन कितना वलिष्ट हो गया था, यह निम्नलिखित छंद में देखने योग्य है :—

जैसो तू न मोको कहूँ नेकहू डरात हुतो,
तैसो अब हौ हूँ तोहि नेकहू न डरिहौं;
कहै 'पदमाकर' प्रचंड जो परैगो, तौ
उमंड करि तोसो भुज दंड ठोकि लरिहौं।
चलाचलु चलाचलु विचलु न वीचही ते,
कीच-बीच नीच तो कुटुंबहि कचरिहौं;
एरे दगादार मेरे पातक अपार,
तोहि गंग की कछार में पछार छार करिहौं।

इस छंद में जैसी तन्मयता और भाव-लीनता है उसकी जो कुछ प्रशंसा की जाय थोड़ी है, और प्रसाद गुण के संबंध में तो कुछ कहनाही व्यर्थ होगा।

सूधरो जो होतो माँगि लेतो और दूजो कहूँ,
जातो वन खेती करि खातो एक हर की ;
या तो 'पदमाकर' न मानत है नाथ चलै,
भुजन के साथ है गिरैया अजगर की।
मैं तो याहि छोड़ौं पै न मोको यह छोड़त है,
फेरि लैरी फेरि व्याधि आपने बगर की ;
सैल पै चढ़त गहि ऊरध की गैल गंग,
कैसो बैल दीन्हे जो न गैल गहै घर की।

गंगा ने अपने किसी भोले भक्त को अपने जल में स्नान करने के उपलक्ष में शिवलोक प्रदान किया। वृषभ-वाहन का वैल उसके साथ कर दिया गया। भक्त ने समझा कि यह वैल उसे खेती करने के लिए दिया गया है। वह उसे अपने घर की ओर ले चलने का प्रयत्न करता था, पर बैल इस आदेश को माने ही क्यों? वह उसे ऊर्ध्व-लोक कैलाश की ओर ले चला, इस पर वह भक्त खीझ कर गंगा माता से प्रार्थना करता है, कि हे माता, आप अपने इस वैल को लौटा लें, इससे मेरा काम न चलेगा, एक तो इसके गले में अजगर पड़ा हुआ है, दूसरे मेरा कहा नहीं सुनता, मैंने इसे छोड़ दिया है, पर मुझे यह छोड़ता भी नहीं है, जबरदस्ती पर्वत के ऊपर लिए जा रहा है। अस्तु, अपनी यह व्याधि तू मुझसे

शीघ्र लौटा ले ! इस छंद में भक्त के सरल स्वभाव निश्छल भोले मन के चित्रण के साथ जैसे सात्विक हास्य का विकास हुआ है, वह बहुत ही मार्मिक और हृदय-ग्राही है। गंगा-स्नान की महिमा जिस अनोखे रूप में व्यक्त की गई है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है।

एक दूसरे छंद में गंगा-स्नान से शिवत्व प्राप्ति का वर्णन है—

हौं तौ पंचभूत तजिबे को तक्यो तोहि पर,
तू तौ कर्यो मोहि भलो भूतन को पति है ;
कहै 'पदमाकर' सु एक तन तारिबे मैं,
कीन्हों तन ग्यारह कहौ सो कौन गति है ?
मेरे भाग्य गंगा यही लिखी भगीरथी तुम्हैं,
कहिए कछूक तौ कितेक तेरी मति है ?
एक भव-सूल आयो मेटिबे को तेरे कूल,
तोहि तो त्रिसूल देत बार न लगति है।

इसमें भी भक्त के भोलेपन और गंगा की उदार दान-शीलता को विरोधाभास अलंकार की सहायता से बहुत ही मार्मिक रूप में व्यक्त किया गया है।

वीर काव्य

पद्माकर को सबसे कम सफलता मिली है वीर अथवा रौद्र भावापन्न काव्यों में ! वीरगाथा-काल की शैली में तो वे सर्वथा विफल हुए हैं। हाँ, भूषण की शैली के अनुगमन में उन्हें अपेक्षाकृत बहुत अधिक सफलता मिली है। उनकी भूषण-शैली की तलवार-प्रशंसा यहाँ पर दी जाती है।:—

दाहन तें दूनी तेज तिगुनी त्रिसूलहू तें,
चिल्लिन तें चौगुनी चलाक चक्र चाली तें ;
कहै 'पदमाकर' महीप रघुनाथ राव,
ऐसी समसेर सेर सत्रुन पै घाली तें।
पाँच गुनी पव्व तें पचीस गुनी पावक तें,
प्रकट पचास गुनी प्रलय प्रनाली तै ;
साठ गुनी सेस तें सहस्र गुनी स्राप्न तें,
लाख गुनी लूक तें करोर गुनी काली तें।

अनुवाद का कार्य सरल नहीं है और प्रधानतः कविता के अनुवाद का कार्य। उससे भी कवि की प्रतिभा का यथेष्ट परिचय मिलता है। पद्माकर के अनेक छंद संस्कृत काव्य सूक्तियों के भावानुवाद हैं। ये अनुवाद कहीं-कहीं तो मूल से भी उत्कृष्ट हो गए हैं, जिनसे उनके प्रोज्वल प्रतिभा का अनुमान लगाया जा सकता है। यहाँ पर उनके कुछ अनूदित छंदों का उदाहरण देना अनुपयुक्त न होगा।

भावानुवाद

निजानपि गजान् भोजं ददानं प्रेक्ष्य पार्वती।
गजेन्द्रवदनं पुत्रं रक्षत्यद्य पुनः पुनः॥

—संस्कृत।

संपति सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि,
तुरत लुटावत बिलंब उर धारै ना ;
कहै 'पदमाकर' सु हेम, हय, हाथिन के,
हलके हजारन के बितर बचारै ना।

गंज गज बकस महीप रघुनाथराव,
याहि गज धोखे कहूँ काहू देई डारै ना ;
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना।

कुछ लोगों का कहना है कि, यह अनुवाद पद्माकर ने अपनी सोलह वर्ष की अवस्था में किया है। प्रसंग के अनुरूप उक्त संस्कृत श्लोक के भाव को उन्होंने अपने कवित्त में जिस कौशल से सम्मिलित कर दिया है, वह प्रशंसनीय है। साथ ही संस्कृत श्लोककार जिस भाव को 'रक्षत्यद्य पुनः पुनः' कह कर भी व्यक्त करने में असमर्थ रहा, उसे उन्होंने 'गिरि तें, गरे तें, निज गोद तें उतारै ना' कह कर इतना चमका दिया है, कि उनकी कला-कुशला लेखनी को बरबस चूम लेने की इच्छा होती है।

क्षीरसारमपहृत्य शंकया स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया।
मानसे मम नितान्त तामसे नन्दनन्दन कथं न लीयसे॥

ए ब्रजचंद गोविंद गोपाल सुनी किन केते कलाम किए मैं ;
त्यों 'पदमाकर' आनँद के नद हौ नँदनंदन जानि लिए मैं।
माखन चोरि कै खोरिन ह्वै चले भाजि कछू भय मानि जिए मैं ;
दूरिहु दौरि दुर्‌यो जो चहौ तो दुरौ किन मेरे अँधेरे हिए मैं।

हे कृष्ण! तुम मक्खन चुराकर भय के कारण गलियों में छिपते फिर रहे हो? अच्छा, यदि तुमको कहीं दूर जाकर छिपना है, जहाँ से तुम्हें कोई ढूँढ न सके, तो क्यों नहीं मेरे अंधकार परिपूर्ण (अज्ञानांधकार भरित) हृदय-गह्वर में आकर छिप रहते?

यहाँ पर तुम्हें कोई पकड़ नहीं सकता। तुम ब्रजचंद हो, अतः मेरा हृदय प्रकाशमान हो जायगा; तुम गोविंद हो, अतः तुम से मेरे हृदय की वात अज्ञात नहीं, वह कैसा है, इसे तुम भली भाँति जानते हो; तुम गोपाल हो, अतः मेरे हृदय का, जो एक गो (इंद्रिय) है, परिपालन करोगे। ब्रजचंद, गोविंद तथा गोपाल, इन तीन संबोधनों द्वारा पद्माकर ने जिन सूक्ष्म तत्वों की ओर संकेत किया है, संस्कृत श्लोक में उसका कहीं पता भी नहीं है। इस दृष्टि से संस्कृत की अपेक्षा हिंदी का सवैया उत्कृष्ट हो गया है। ऐसे छंदों को अनुवाद कहना बहुत उचित नहीं है।

प्रहर विरतौ मध्यं वान्हस्ततोऽपि परेण वा,
किमुत सकले याते वाह्रि प्रियत्व मिहैष्यसि।
इति दिन शत-प्राप्य देशं प्रियस्य कियासतो,
हरति गमनं वलालयैः सवाष्प गलज्जलैः॥

—संस्कृत।

सौ दिन को मारग तहाँ को वेगि माँगी विदा—
प्यारी 'पदमाकर' परभात राति वीते पर;
सो सुन पियारी पिय गमन वराइवे को,
आँसुन अन्हाइ वोली आसुन सुतीते पर।
वालम बिदेस तुम जात हौ तो जाहु पर,
साँचि कहि जाउ कव ऐहो भौन रीते पर;
पहर के भीतर कै दोपहर भीतरही—
तीसरे पहर कैधौं साँझ ही वितीते पर?

दोनों छंदों के भाव प्रायः एक ही हैं किंतु संस्कृत के 'हरति गमनं बलालयैः सवाष्प गलज्जलैः' की अपेक्षा—'पिय गमन बराइबे को आँसुन अन्हाइ बोली' में अधिक अधीरता है।

वाले ! नाथ ! विमुञ्च मानिनि रुषं, रोषान्मया किं कृतं ?
खेदोऽस्मासु, नमेपराध्यति भवान्, सर्वेऽपराधा मयि।
तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा ? कस्याग्रतो रुद्यसे ?
नन्वेतन्मम, का तवाऽस्मि ? दयिता। नास्मीत्यतो रुद्यते।

—अमरुक।

ए बलि कहौ हौ कित्त ? का कहत कंत ? अरी !
　　रोस तज। रोस कै कियो मैं का अचाहे को ?
कहै 'पदमाकर' यहै तौ दुख दूरि करौं—
　　दोष न कछू है तुम्हैं नेह निरवाहे को।
तो पै इत रोवति कहा हौं कहौं ? कौन आगे ?
　　मेरेई जु आगे, किए आँसुन उमाहे को।
को हौं मैं तिहारी ? तू तौ मेरी प्राणप्यारी। आजु
　　होती जो पियारी तब रोती कहो काहे को ?

उपर्युक्त उभय छंदो में सापराध नायक एवं खंडिता ( मध्या-धीराधीरा ) नायिका का कथोपकथन है। अनुवाद में कोई त्रुटि नहीं आने पाई है।

क्व प्रस्थिताऽसि कर भोरु ! घने निशीथे ?
प्राणाधिको वसति यत्र प्रियोजनोये।

एकाकिनी वद कथस विमेषि बाले ?
नन्वास्ति पुंखित शरो मदनो सहाय: ॥

—घमरुक ।

कौन है तू, कित जाति चली, बलि बीती निसा अधराति प्रमानै ?
हौं 'पदमाकर' भावती हौं, निज भांवते पै अब हौं मोहि जानै ।
तौ अलबेली अकेली डरै किन ? क्यों डरें, मेरी सहाय के लानै—
है सखि संग मनोभव सो भट कान लौं बान सरासन तानै ।

पद्माकर की सवैया उक्त संस्कृत श्लोक का अक्षरशः अनुवाद है। यद्यपि श्लोक वसंततिलका जैसे छोटे छंद में होने के कारण कुछ अधिक गठित है। किंतु अनुवाद का सवैया जैसे अपेक्षाकृत विस्तृत छंद में होने के कारण, कवि की इच्छा न रहते हुए भी, शब्द संघटन कुछ बिखर सा गया है, फिर भी अनुवाद को बुरा नहीं कहा जा सकता। इसी संस्कृत श्लोक का एक अनुवाद दोहा छंद में भी हुआ है।

घोर निसा कहँ जाति चलि ? जहाँ बसत मम नाथ ;
निपट अकेली डर न हिय ? मदन-महीपति साथ।

घोर निशा से रात्रि की भयानकता की प्रतीति होती है और 'निपट अकेली' से नायिका की असहाया अवस्था एवं भय की पुष्टि होती है। किंतु राजा का काम असहाय प्रजा की रक्षा करना है और मदन महीपति साथ में ही है, फिर भय के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। शब्द संघटन एवं भावोत्कृष्टता की दृष्टि से

उक्त दोनों छंदों की अपेक्षा पाठकों को शब्द संघटन के कारण यह दोहा ही अधिक उत्तम प्रतीत होगा।

नायिका ने अपनी अंतर्व्यथा का संदेश देकर दूती को नायक के निकट भेजा, पर वह स्वयं ही नायक से रमण कर अपनी मनोकामना पूर्ण करके लौटी और नायिका के निकट मिथ्या बातें बनाने लगी। नायिका उसकी अवस्था देखकर सब बातें समझ गई और उसने उसके ऊपर व्यंग करके कहा :—

निःशेषच्युत चन्दनं स्तनतटं निर्मृष्ट रागोधरो,
नेत्रे दूरमञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः।
मिथ्यावादिनी! दूती बान्धवजनस्याज्ञानपीडागमे।
वापीं स्नातु मितो गताऽसि न पुनस्तस्याधम स्यान्तिकम्॥

पद्माकर कृत इसका अनुवाद यों है :—

धोय गई केसर कपोल कुच गोलन की,
पीक लीक अधर अमोलन लगाई है;
कहै 'पदमाकर' त्यों नैनहूँ निरंजन भे,
तजत न देह कंप पुलकनि छाई है।
वाद मति ठानै झूठ वादिनि भई री अब,
दूतपनो छोड़ धूतपन में सुहाई है;
आई तोहि पीर न पराई महा पापिनि तू,
पापी लौं गई न कहूँ बापी न्हाइ आई है।

अनुवाद प्रायः मूल के अनुरूप ही हुआ है। किंतु 'पीक लीक अधर अमोलन लगाई है' प्रयोग चिंत्य है। मूल में 'निर्मृष्ट रागोधरः'

प्रयोग आया है, जिसका अर्थ होता है 'अधरों से राग स्वच्छ हो गया' पर अनुवाद में पीक लीक लगाई है, जो मूल के सर्वथा विपरीत है और काव्य के विचार से भी हीन है। मैंने अपने एक मित्र से इसका पाठ 'पीक लीक अधर अमोल धोय लाई है।' सुना है और यही उचित भी जान पड़ता है। मेरा अनुमान है, कि लिपि-प्रमाद के कारण ही यह अशुद्ध पाठ प्रचलित हो गया है।

दृष्ट्वैकासनसंस्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्यादराद्,
एकस्या नयने पिधाय विहितं क्रीडानुबन्धच्छलः।
ईषद्वक्रितकन्धरः सपलकः प्रेमोल्लसन्मानसाम्,
अन्तर्हास लसत्कपोलफलकां धूर्त्तोऽपरां चुम्बति॥

—अमरुक।

दोउ छवि छाजती छबीली मिलि आसन पै,
जिनहिं बिलोकि रह्यो जात न जितै-जितै;
कहै 'पदमाकर' पिछौहैं, आइ आदर सों,
छलिया छबीलो छैल बासर बितै-बितै।

मूँदे तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग,
सुदृग मिचावनी के ख्यालन हितै-हितै;
नेसुक नवाइ ग्रीवा धन्य धन्य दूसरी को,
औचक अचूक मुख चूमत चितै-चितै।

पद्माकर का यह अनुवाद बहुत अच्छा नहीं हुआ है क्योंकि मूल के 'सपुलकः' प्रेमोल्लसन्मानसम् तथा अंतर्हासलसत्कपोल फल-

उक्तियों को जान बूझकर कुछ परिवर्तन के साथ अपना लेते हैं और कभी उनकी अज्ञात अवस्था में ही उनकी

उक्ति-साम्य

कोई उक्ति किसी अन्य कवि की उक्ति से मेल खा जाती है। पद्माकर की भी कुछ ऐसी ही उक्तियाँ पाई जाती हैं, जिनमें से कुछ उनके काव्य की आलोचना करते समय दी जा चुकी हैं और कुछ इस स्थल पर दी जाती हैं।

तुलसी मूरति राम की, घट घट रही समाय;
ज्यों मेंहदी के पात में, लाली लखी न जाय।

—तुलसीदास।

यहि अनुमान प्रमानियत, तिय तन जोवन जोति;
ज्यों मेंहदी के पात में, अलख ललाई होति।

—पद्माकर।

भगी देखि कै संकि लंकेस बाला;
दुरी दौरि मंदोदरी चित्रसाला।
तहाँ दौरिगो बालिको पूत फूल्यो;
सबै चित्र की पुत्रिका देखि भूल्यो।

—केशवदास।

छूटि भाजी करते सुकर के विचित्र गति,
चित्र कैसी पूतरी न पाई चित्रसारी में।

—पद्माकर।

चिर जीवो जोरी जुरै, क्यों न सनेह गँभीर;
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर।

—बिहारी।

पांव धरै अलि ठौर जहां तेहि
　　ओर ते रंग की धार सी धावति ;
मानों मजीठ की मांठ ढुरी एक
　　ओर ते चांदनि बोरति आवति ।

—देव ।

धरत जहांई जहां पग है सु प्यारी तहां,
　　मंजुल मजीठ ही की मांठसी ढुरत जात ।

—पद्माकर ।

फांसी से फुलेल लागे गांसी से गुलाब अरु—
　　गाज अरगजा लागे चोवा लागे चहकन ;
अंग-अंग आगि ऐसे केसर के नीर लागे—
　　चीर लागे जरन अबीर लागे दहकन ।

—देव ।

कहरसी केसर कपूर लाग्यो काल सम,
　　गाज सों गुलाब लाग्यो अरगजा आग सों ।

—पद्माकर ।

बड़े बड़े नैनन ते आंसू भरि-भरि ढरि—
　　गोरो-गोरो मुख आजु ओरों सो बिलानो जात ।

—देव ।

कहै 'पद्माकर' नहीं तो ये झकोरे लगे,
　　ओरे लौं अचानक बिन घोरे घुर जायगी ।

—पद्माकर ।

दुहुन को रूप गुन दोऊ बरनत फिरैं,
घर न थिरात रीति नेह की नई—नई ;
मोहि-मोहि मोहन को मन भयो राधामय,
राधा मन मोहि-मोहि मोहन मई—मई।
—देव।

दोउन को सुधि है न कछू बुधि वारी बलाय में बूढ़ि रही है ;
त्यौं 'पदमाकर' दौन मिलाय क्यों चंग चवाइन की उमही है।
आतुरि की या दिसा दिव में दसा दोउन की नहिं जात कही है ;
मोहन मोहि रह्यो कबको कब की वह मोहिनी मोहि रही है।
—पद्माकर।

मोतिन को मेरो तोर्‌यो हरा गहि हाथन सों रहे चूनरी पोढ़े ;
ऐसे ही डोलत छैल भये तुम्हें लाज न आवत कामरी ओढ़े।
—मतिराम

फाग में लाडिली की तिहि में, तुम्हें लाज न लागत गोप कहूँ के ;
छैल भए छतियाँ छिरकौ फिरौ, कामरि ओढ़े गुलाल के दूके।
—पद्माकर।

चाहति फल तोरो मिलन, निसि बासर वह बाल ;
कुच-सिव पूजति नैन जल, बुंद मुकतामय माल।
—मतिराम।

यों स्रम सीकर सुमुख ते, परत कुचन पर बेस ;
उदित चंद्र मुकताछतनि, पूजति मनहुँ महेस।
—पद्माकर।

फूलन सों बाल की बनाय गुही बेनी लाल–,
भाल दीनी बेंदी मृग-मद की असित है ;
अंग-अंग भूषन बनाय ब्रजभूषन जू—
बीरी निज करिकै खवाई अति हित है।
ह्वै कै रस बस जब दीबे को महावर के—
'सेनापति' स्याम गह्यो चरन ललित है ;
चूमि हाथ नाथ को लगाय रही आँखिन सों,
कही प्रानपति यह अति अनुचित है।

—सेनापति।

अंग राग औरै अँगन करत कछू बरजीन ;
पै मेंहदी न देवाइहौं तुमसों पगन प्रवीन।

—पद्माकर।

दिग्गज, दुचित्त, चित सोचन पुरंदर भे—
आजु मेरे करि को का भिच्छुक चिलसि हैं ;
देत गजदान भूप दसरथ राज-राज—
राम-जन्म भए को बधावनो हुलसि हैं।
हाथी कै हजारन के हल्के सुजाचक हू,
आछे अलकेस मनौ आप के सुबसि हैं ;
गोय लै गनेस गिरजा सों 'छत्रसाल' कहै,
गज कै भरम लै भिखारिन बगसि हैं।

—छत्रसाल।

संपति सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि,
तुरत लुटावत बिलंब उर धारै ना ;
कहै 'पद्माकर' सु हेम, हय, हाथिन के,
हलके हजारन बितर बिचारै ना ।
गंज-गज बकस महीप रघुनाथराव,
याही गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना ;
याही डर गिरिजा गजानन को गोय रही,
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना ।

—पद्माकर ।

काजर दे नहिं एरी सुहागिनि,
आँगुरी तेरी कटैगी कटाछन ।

—आलम ।

कहा करौं जो आँगुरिन, अनी घनी चुभि जाय ;
अनियारे चख लखि सखी, कजरा देत डराय ।

—पद्माकर ।

ज्यों ज्यों पट्ट को कसै निरदै,
हिरदै तहि होत भट्ट को छ टूको ।

—तोष ।

एते पै रह्यो न प्रान मोहन लट्ट पै भट्ट,
टूक-टूक ह्वै कै जो छ टूक भई आंगी री ।

—पद्माकर ।

भरि जात गरो चुप ह्वै रहती है ।

—तोषनिधि ।

भरि आयो गरो कढ़ि आयो कछू ना।

—पद्माकर।

ढार फिरैं पलका पर वारि,

पुरैनि के पात पै ज्यों ठहरै ना।

—तोषनिधि।

बात के लागे नहीं ठहरात हैं,

ज्यों जलजात के पात पै पानी।

—पद्माकर।

मुसकान लगी, करै कान लगी,

लगी पान को देन सयान लगी।

—तोष।

जाहि न चाह कछू रति की,

सो कछू पति को पतियान लगी।

—पद्माकर।

मूल करनी को धरनी पै नर देह लीनो,

देहन को मूल फेरि पालन सुनीको है;

देह पालिबे को मूल भोजन सुभरन है,

भोजन को मूल होनो बरषा घनीको है।

'ग्वाल' कवि मूल बरषा को है जजन, जप,

जजन सुमूल वेद भेद बहु नीको है;

वेदन को मूल ज्ञान, ज्ञान मूल तारिबे त्यों,

तारिबे को मूल नाम भानुनंदिनी को है।

—ग्वाल।

करम को मूल तन, तन मूल जीव जग,
जीवन को मूल अति आनँद ही धरिबो ;
कहै 'पद्माकर' त्यों आनंद को मूल राज,
राजमूल केवल प्रजा को भौन भरिबो ।
प्रजा मूल अन्न सब अन्नन को मूल मेघ,
मेघन को मूल एक जज्ञ अनुसरिबो ;
जज्ञन को मूल धन, धन मूल धर्म अरु,
धर्म मूल गंगा जल बिंदु-पान करिबो ।

—पद्माकर ।

लहरा लहरा है तरक्की पै तेरा हुस्नो जमाल ।
जिसको शक हो तुझे देखे तेरे तस्वीर के साथ ।

—अकबर ।

पल पल पर पलटन लगे, जाके अंग अनूप ;
ऐसी इक ब्रज बाल को, को कहि सकत स्वरूप ।

—बिहारी ।

कछु गज गति के साहटनि, छिन छिन छीजत सेर ;
बिध बिकास बिकसत कमल, कछू दिनन के फेर ।

—पद्माकर ।

आजु अकेली उतावलि हौं पहुँची तट लौं तुम आई करार में ;
बाल सखीन के हा हा किए मन के हूँ दियो जल केलि बिहार मैं ।
सीतल गात भये सिगरे उछरी तौ मरूकै कितेकहू बार मैं ;
कान्ह जो धाय धरै न अली तौ बही थी भले जमुना-जलधार मैं ।

—अज्ञात ।

और भगी जमुना-जलधार में धाय धँसी जलकेलि की माती ;
त्यों 'पदमाकर' पैग चलै उछलै जल तुंग तरंग बिघाती ।
टूटे हरा छरा छूटे सबै सरबोर भई अँगिया रँगराती ;
को कहतो यह मेरी दसा गहतो न गोविंद तो मैं बहि जाती !

—पदमाकर ।

कवि 'बेनी' कहै छवि मोहन की मनमोहिनी सोहियै ध्यान धरै ;
धरैं पावन भागिन सौं महिमा कला सौं बनिता हँसि अंक भरै ।

—बेनी ।

त्यों 'पदमाकर' ताकि तमालनि भेटिबे को कबहूँ हठि पावै ;
तो हरि सावरो चित्र लखै तो कहूँ कबहूँ हँसि हेरि बुलावै ।

—पदमाकर ।

कोऊ एक पापी, भूल मरो, ताहि जमदूत,
लाये बाँधि मजबूत फाँसी ताके गल में ;
तैसी ही उड़ाय, गंगा न्हाय कढ़ो काग आय
पवन सों ताके रेनु-कन गिरी तल में ।
परसत रेनु ताके सीस गंगाधार कढ़ी,
'लेखराज' ऐसी बढ़ी पुरी जलाहल में ;
बिकल ह्वै जम भागे, जमदूत आगे भागे,
पीछे चित्रगुप्त भागे, कागद बगल में ।

—लेखराज ।

लाय भूमि लोक में जमूस जबरई जाय,
जाहिर जबर करी, पापिन के मित्र की ;
कहै 'पदमाकर' बिलोकि यम कहो—कै,
विचारौ तौ करमगति ऐसे अपवित्र की ।
जौलौं लगे कागद बिचारन कछुक तौलौं,
वाके कान परी धुनि गंगा के चरित्र की ;
ताके सीस ही तें ऐसी गंगाधार वही, जा में
वही-वही फिरी वही चित्र औ गुपित्र की ।

—पद्माकर ।

पद्माकर की यह काव्य-समीक्षा समाप्त करने के पूर्व उनकी काव्य गत निर्बलताओं पर भी—यद्यपि प्रसंगवश उनकी चर्चा पहले भी आ चुकी है, पर इस स्थल पर पृथक रूप से—विचार कर लेना अनुपयुक्त न होगा ।

काव्यगत निर्बलताएँ— पद्माकर का अपने संबंध में यद्यपि यह गर्वोक्ति प्रसिद्ध है कि 'संस्कृत प्राकृत पढ़ो जु गुन ग्रामा हौं' परंतु उनकी रचनाओं को देखने से पता चलता है कि उनका अध्ययन बहुत गंभीर नहीं था । जिसका अध्ययन गंभीर और अनुभव विस्तृत होता है उसके निकट भावों का अभाव नहीं होता । किंतु पद्माकर के काव्यों में यह अभाव यथेष्ट रूप में पाया जाता है । एक ही भाव कुछ परिवर्त्तनों के साथ उनके विविध छंदों में पाया जाता है । गंगा-लहरी में गंगा-स्नान से शिवत्व प्राप्ति की चर्चा उन्होंने अनेक छंदों में की है । यथा:—

लैहै छीनि अंबर दिगंबर कै जोरावरी.

बैल पै चढ़ाइ फेरि सैल पै चढ़ावेगी ;

मुंडन के माल की भुजंगन के जाल की,

सुगंगा गज खाल की खिलत पहिरावेगी ।

× × × ×

कहै 'पदमाकर' भुजंगन बधैंगे अंग,

संग मैं सुभारी भूत चलैंगे मसान मैं ,

कमर कसैंगे गज खाल ततकाल बिन ;

अंबर फिरैगो तू दिगंबर दिसान मैं ।

× × × ×

जौ लौं वरी ह्वैक न पायो रूप हर को ।

× × × ×

जौलौं चतुरानन चितैवे चारो ओर तौलौं,

वृष पै चढ़ाइ लै गयोई वृषपति है ।

× × × ×

मुंडन की माल देखो भाल पर ज्वाल की वो,

छीनि लियो अंबर अडंबर जहाँ जैसो ;

कहै 'पदमाकर' त्यों बैल पै चढ़ाइयो,

उढ़ाइवो पुरानी गज - खाल भलो तैसो ।

नंगा करि डारिवो सुभंगा भखि डारियो,

सुगंगा दुख मानियो न बूझै तो कछू वैसो ;

साँपन सिंगारिवो गरे मैं विष पारिवो,

सुतारिवो जो ऐसो तो बिगारिवो कहौ कैसो ?

इसी प्रकार उनके अनेक अन्य छंद भी समभाव के पाए जाते हैं। परंतु उस समय तो वास्तव में आश्चर्य होता है जब कि उनकी पुस्तकों की भूमिका एक ही प्रकार की पाई जाती है। यथा :—

दौलत आलीजाह नृप, हुकुम कियो निधि नेहु ;
आलीजाह प्रकास यह सरस ग्रंथ रचि देहु ;
दौलत आलीजाह को हुकुम पाय सविलास ;
कवि 'पद्माकर' करत हैं, आलीजाह प्रकास।
दौलत नृप के हुकुम ते आली अतिहि हुलास ;
कवि 'पद्माकर' ही कियो आलीजाह प्रकास।

—आलीजाह प्रकास।

जगतसिंह नृप जगत हित हर्ष किये निधि नेहु ;
कवि 'पद्माकर' सो कह्यो सरस ग्रंथ रचि देहु।
जगतसिंह नृप हुकुम ते पाइ महा मन मोद ;
'पद्माकर' जाहिर, करत जग हित जगत विनोद।

—जगद्विनोद।

पद्माकर का सब रसों पर समान प्रभाव नहीं देखा जाता। उन्हें जैसी सफलता शृंगार के काव्य में मिली है, अन्य रसों के काव्यों में नहीं। उनका भक्ति और वीर काव्य यदि बहुत उत्तम नहीं तो बुरा भी नहीं कहा जा सकता है, पर उनके अन्य रसों के काव्य यथेष्ट फीके पड़ गये हैं। उदाहरणार्थ यहाँ पर उनका एक हास्य रस का काव्य दिया जाता है।

हँसि हँसि भाजैं देखि दूलह दिगंबर को,
पाहुनी जे आवैं हिमाचल के उछाह में ;
कहै 'पद्माकर' सु काहू सो कहै को कहा,
जोई जहाँ देखै सो हँसेई तहाँ राह में ।
मँगन मयेउ हँसे नगन महेस ठाढ़े,
और हँसे एऊ हँसि-हँसि के उमाह में ;
सीस पर गंगा हँसै भुजनि भुजंग हँसैं,
हास ही को दंगा भयो नंगा के बिबाह में ।

इस कविता को एक नहीं चार बार पढ़ा जाय पर हँसी क्या मंद गुदगुदी भी नहीं मालूम पड़ेगी। हास्य शब्द का बारंबार प्रयोग करके भी कवि किंचित भी हास्य उत्पन्न नहीं कर सका है। पद्माकर की काव्यगत निर्बलता कथानक-काव्य में अत्यधिक खुल पड़ी है। उनके दो कथानक काव्य हैं—एक हिम्मतबहादुर-विरुदावली और दूसरा राम-रसायन। हिम्मतबहादुर-विरुदावली में हिम्मतबहादुर के युद्धादिकों का वर्णन है; यह वीर काव्य है। रामरसायन वाल्मीकि रामायण का अनुवाद है, यह महाकाव्य है। हिम्मतबहादुर-विरुदावली की रचना तत्कालीन विचारपद्धति के अनुसार बुरी नहीं कही जा सकती, किंतु रामरसायन यद्यपि एक सर्वमान्य ग्रंथ का अनुवाद है पर अनेक दृष्टियों से बहुत ही शिथिल काव्य है। उसको देखकर स्पष्ट विदित होता है कि पद्माकर कथानक काव्य की रचना में सर्वथा असमर्थ थे। ऐसा प्रतीत होता है, कि पद्माकर को भी अपनी यह असमर्थता अविदित

नहीं थी, इसी से न तो उन्होंने रामरसायन को पूर्ण किया और न किसी अन्य कथानक या महाकाव्य अथवा खंड-काव्य रचना का साहस।

पद्माकर के काव्य पर जो सबसे बड़ा दोष लगाया जाता है वह है अश्लीलता का। यद्यपि उनके काव्य के अधिकांश पात्र अनंग के रसमय तरंग में निमग्न हैं, किंतु तत्कालीन प्रचलित साहित्यिक प्रवृत्ति को देखते हुए उन्हें बहुत हीन कोटि में नहीं रखा जा सकता, फिर भी उनके दो चार छंद ऐसे अवश्य हैं जिनकी अश्लीलता को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ यहाँ पर उनका एक ऐसा छंद दिया जाता है, जिसमें चतुर्थ पंक्ति विशेष चिंत्य है।

ऊधम ऐसो मचो ब्रज में सबै रंग तरंग उमंगनि सींचैं;
त्यौं 'पद्माकर' छज्जनि छातनि छ्वै छिति छाजति केसर कीचैं।
दै पिचकी भजी भीजी तहाँ परे पीछे गोपाल गुलाल उलीचैं;
एकहि संग इहाँ रपटे सखी ए भए ऊपर हौं भई नीचैं।

किंतु ऐसी अश्लील रचनाएँ दो चार ही हैं, अधिक नहीं। फिर तत्कालीन प्रवृत्ति को देखते हुए हमें उनको इसके लिये क्षमा करना योग्य होगा।

पद्माकर की शब्दाडंबर प्रियता पर भी बहुत बड़ा आक्षेप है। इसमें कोई संदेह नहीं कि उनके किसी किसी छंद में शब्दों का खूब ऊहा पोह पाया जाता है किंतु ऐसे प्रयोग अरुचिकर मात्रा

में नहीं है। उनकी भाषा में कहीं-कहीं ग्राम्य शब्दों के प्रयोग तथा हीनोपमा पतत्प्रकर्ष आदि अलंकारगत दोष भी देखे जाते हैं, पर बहुत कम। व्यापक दृष्टि से विचार करने पर उनकी भाषा यथेष्ट मार्जित हुई है। पद्माकर के संबंध में पहले भी यथेष्ट विस्तृत विवेचना हो चुकी है। अस्तु, इस स्थल पर कुछ अधिक लिखना पृष्ट-पेषण मात्र होगा।

इस प्रकार पद्माकर के काव्य के गुण दोष की परीक्षा करके देखा जाता है कि उनका भांडार यद्यपि छोटा है, किंतु उसमें जो कुछ है उसका एक भाग बहुत ही उज्ज्वल एवं

निष्कर्ष—

उत्कृष्ट है। उनकी भाषा बहुरूपिणी है। भावानुरूप वह सरल, तरल तथा मुहाविरा संपन्न हुई है उनकी भाषा की जैसी अनेकरूपता देखी जाती है वैसी अंग्रेजी में Tennyson और हिंदी में तुलसीदास, मतिराम जैसे कुछ उत्कृष्ट कवियों में ही पाई जा सकती है। उनके भावों में यद्यपि आज कल के विचारानुसार बहुत गंभीरता नहीं पाई जा सकती एवं Shakespear या Byron की स्वाभाविकता (Realism) भी नहीं आ पाई है, किंतु वह बिहारी या देव की अद्भुतता या चमत्कार पूर्ण व्यंजना से, जो मन को स्पर्श करने के स्थान पर आश्चर्यान्वित ही अधिक करती है, भरी नहीं है, उसमें केशव के काव्य की हृदय-हीनता भी नहीं पाई जाती। पद्माकर जी अनुभव के कवि थे और उनका वह अनुभव यथेष्ट सुंदर रूप में विकसित हुआ है। वे बड़े सूक्ष्मदर्शी थे; इसी से उनके काव्य में मानव-हृदय का जो

प्रधान उद्देश्य मन को आनंद प्रदान करना है। अतएव, जिस काव्य में जितने ही अधिक मनुष्यों को आनंद प्राप्त हो वह उतनाही श्रेष्ट है।"—यदि पद्माकर के काव्य की इसी दृष्टि से परीक्षा की जाय तो रीति-कालीन कवियों में बिहारी के पश्चात् उन्हीं का स्थान मानना पड़ेगा। कुछ समीक्षकों के विचार से तो पद्माकर की ही कविता अधिक प्रसिद्ध हुई है। किंतु ऐसा निर्णय विवादास्पद होगा। बिहारी का स्थान कला एवं भाव दोनों ही दृष्टियों से मुक्तक काव्य रचयिताओं में बहुत ऊँचा है; पद्माकर की रचना में काव्य-रीति ( Diction ) की जितनी रक्षा हुई उतनी अन्य बातों की नहीं तथा प्रसिद्धि के विचार से भी किसी प्रांत में बिहारी प्रसिद्ध हैं तो दूसरे में पद्माकर। पद्माकर की अत्यधिक लोक-प्रियता के कारण मुक्तक काव्य की रचना के लिये एक पृथक् पद्माकरी शैली ही निकल गई है। उनकी शैली को उनके परवर्ती कवियों ने स्वच्छंद रूप से अपनाया है। व्रजभाषा के कवियों में अब तक उन्हीं का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इस प्रकार पद्माकर जी अपनी प्रणाली के आचार्य और प्रतिनिधि कवि हैं। अस्तु, ऐतिहासिक दृष्टि से भी उनका महत्त्व बहुत बड़ा है।

---

जाही जुही मल्लिका चमेली मन मोहिनी की,
कोमल कुमोदिनी की उपमा उराव की;
कहै 'पद्माकर' त्यों तारन दिपारन की,
बिगर गुनाह असगैंधी गुँर पाद की।

दूर करी चोखी चाँदनी की छवि छलकत,
पलक में कीनी छीन आब महताब की;
पा परि काहत पीत कापर परैगी आज,
गरद गुलाब की चबाई आफताब की।

जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी;
त्यों 'पद्माकर' हीर के हारन गंग तरंगनि को सुख देनी।
पायन के रँग सो रँगि जाति सी भाँतिहि भाँति सरस्वती सेनी;
पैरै जहाँई जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिबेनी।

जुवनि जुन्हाई सों न कछु और भेद अवरेखि;
तिय आगम पिय जानिगो चटक चाँदनी पेखि।
चख, मख, बार, सिवार, मुख, सरसिज गमन मराल;
छबि तरंग पानिप सलिल बाल मानसर-ताल।
दृग सों जरयो जु काम, तिहि दृग सों ज्यावत जोइ;
सिव हूँ की जितवार तिय, ताहि भजो सब कोइ।

## वयःसंधि

चौक में चौकी जराय जरी तिहि पै खरी बार बगारत सौंधे;
छोरि भरी हरी कंचुकी न्हान को अंगन ते जगे जोति के कौंधे।

छाई उरोजन की छवि यों 'पदमाकर' देखत ही चकचौंधे ;
भाजि गई लरिकाई मनों लरिकै करिकै दुहूँ दुंदुभि औंधे।
ए अलि, या बलि के अधरान में आनि चढ़ी कछु माधुरई सी ;
ज्यों 'पदमाकर' माधुरी त्यों कुच दोउन की चढ़ती उनई सी।
ज्यों कुच त्योंही नितंब चढ़े कछु ज्योंही नितंब त्यो चातुरई सी ;
जानि न ऐसी चढ़ा चढ़ि में केहि धौं कटि बीचहि लूटि लई सी।

कछु गज गति के आहटनि, छिन-छिन छीजत सेर ;
बिधु विकास विकसत कमल, कछू दिनन के फेर।

## नेत्र

रूप रस चाखैं मुख रसना न राखैं फिर,
भापै अभिलाषैं तेज उर से मभारतीं ;
कहै 'पदमाकर' त्यों कानन बिनाहू सुनैं,
आनन के बैन यों अनोखे अंग धारतीं।
बिना पाँव दौर बिन हाथ हथियार करैं,
कोर के कटाच्छन पटासे झूम झारतीं ;
पाँखन बिना ही करैं लाखन ही वार आखैं,
पावती जो पाँखै तो कहा धौं कर डारतीं।

## भृकुटि-भंगिमा

छवि छलकन भरी पीक पलकन त्योंहीं,
स्रम-जलकन अलकन अधिकाने द्वै ;
कहै 'पदमाकर' सुजान रूपखानि तिया,
ताकि-ताकि रही ताहि आपुही अजाने है।

परसत गात मनभावन के भावती की,
चढ़ि गई भौंहैं रही ऐसी उपमाने छ्वै ;
मानों अरविंद पै चंद को चढ़ाय दीन्ही,
मान कमनैत बिन रोदा की कमाने द्वै ।

## बरुणी

कहा करौं जो आँगुरिन, अनी घनी चुभि जाय ;
अनियारे चख लखि सखी, कजरा देत डराय ।

## तिल

कैधों रूप रासि में सिंगार रस अंकुरित,
कंकुरित कैधों तम तड़ित जुन्हाई में ;
कहै 'पद्माकर' किधों यों काम कारीगर,
नुकता दियो है हेम फरद सुहाई में ।
कैधों अरविंद मैं मलिंद सुत सोयो आनि,
कैधों तिल सोहत कपोल की लुनाई में ;
कैधों पस्यो इंदु में कालिंदी जलबिंदु कैधों,
गरक गोविंद गयो गोरी की गोराई में ।

## अधर

तुव अधरन के हित सखी, मथि लिय अमृत जू सार ;
सोई दुसह दुख सों अहै, अब लगि सिंधु सखार ।

## आसक्ति

ये वृषभानु किसोरी भईं इतै ह्वाँ वह नंद-किसोर कहावैं ;
त्यों 'पदमाकर' दोउन पै नवरंग तरंग अनंग की छावैं ।
दौरे दुहूँ दुरि देखिवे को दुति देखि दुहूँ की दुहूँन को भावै ;
ह्यां इनके रस-भीजे बड़े दृग ह्वाँ उनके मसि भीजत आवै ।

रूप दुहूँ की दुहूँन सुन्यो सु रहै तब ते मनो संग सदाहीं ;
ध्यान में दोऊ दुहून लखैं हरषैं अँग-अंग अनंग उछाहीं ।
मोहि रहे कब के यो दुहूँ 'पदमाकर' और कछू सुधि नाहीं ;
मोहन को मनमोहिनि में बस्यो मोहिनि को मनमोहन माहीं ।

स्वेद को भेद कोऊ न कहै ब्रत आँखिन हूँ अँसुवान को धारो ;
त्यों 'पदमाकर' देखत ही तनकौ तन-कंप न जात सँभारो ।
ह्वै धौ कहा को कहा गयो यों दिन द्वैकहि तैं कछु ख्याल हमारो ;
कानन में बसी बाँसुरी की धुनि प्रानन में बसो बाँसुरी वारो ।

ये इत घूँघट घालि चलैं उत बाजत बाँसुरी की धुनि खोलैं ;
त्यों 'पदमाकर' ये इतै गोरस लै निकसै यों चुकावत मोलैं ।
प्रेम के पंथ, सुप्रीति की पैठ में पैठत ही है दसा यह जोलैं ;
राधामई भई स्याम की मूरति स्याममई भई राधिका डोलैं ।

मंडप ही में फिरे मँडरात न जात कहूँ तजि नेह को औनो ;
त्यों 'पदमाकर' तोहि सराहत बात कहै जु कछू कहौ कौनो ।
ए बड़भागिनि तो सी तुही वलि जो लखि रावरो रूप सलौनो ;
ब्याह ही ते भए कान्ह लटू तब ह्वै है कहा अब होहिगो गौनो ।

बछरै खरी प्यावै गऊ तिहि को 'पदमाकर' को मन लावतु है ?
तिय जानि गिरैया गही बनमाल सु ऐंच्यों लला इँच्यों आवतु हैं।
उलटी करि दोहिनी मोहिनी की अँगुरी थन जानि दबावतु हैं ;
दुहिबो औ' दुहाइबो दोउन को सखि! देखत ही बनि आवतु हैं।

## प्रेम-क्रीड़ा

दोऊ छबि छाजती छबीली मिलि आसन पै,
जिनहि बिलोकि रह्यो जात न जितै-जितै ;
कहै 'पदमाकर' पिछौहैं आइ आदर सों,
छलिया छबीलो छैल बासर बितै-बितै।
मूदैं तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग,
सुदृग मिचाउनी कै ख्यालन हितै-हितै ;
नैसुक नवाइ ग्रीवा धन्य-धन्य दूसरी को,
औचक अचूक मुख चूमत चितै-चितै।

लै पट पीतम के पहिरै पहिराइ पियै चुनि चूनर खासी ;
त्यों 'पदमाकर' साँझही ते सिगरी निसि केलि-कला परकासी।
फूलत फूल गुलाबन के चटकाहट चौंकि चकी चपला-सी ;
कान्ह के कानन आँगुरी लाय रही लपटाइ लवंग लता-सी।

## क्रिया-विदग्धा

गो गृह काज गुवालन के कहैं देखिबे को कहूँ दूरिके खेरो
माँग बिदा लई मोहिनि सों 'पदमाकर' मोहन होत सबेरो।

फेट गही न गही बहियाँ न गरी गहि गोविंद गौन ते फेरौ ;
गोरी गुलाब के फूलन को गजरा लै गुपाल की गैल में गेरौ ।

## सुरत-संगोपना

भोर-भयो जमुना जल-धार में धाय धँसी जलकेलि की माती ;
त्यों 'पदमाकर' पैंग चले उछले जब तुंग तरंग बिघाती ।
टूटे हरा छरा छूटे सबै सराबोर भई अँगिया रँगराती ;
को कहतो यह मेरी दसा गहतो न गोबिंद तो मैं बहि जाती ।

## भर्त्सना

ऐहै न फेरि निसा जो गई तन-जोबन है घन की परछाहीं ;
त्यों 'पदमाकर' क्यों न मिलै उठि यों निबहैगो न नेह सदाहीं ।
कौन सयानि जो कान्ह सुजान सों ठान गुमान रही मनमाहीं ;
एक जु कंज कली न खिली तो कहा कहुँ भौंर को ठौर है नाहीं ?

## अभिलाषा

प्रीतम के संग ही उमँगि उड़ि जैबे को,
न एती अंग अंगन परंद पँखिया दई ;
कहै 'पदमाकर' जे आरती उतारैं, चौंर—
ढारैं स्रम हारैं पै न ऐसी सखियाँ दई ।
देखि द्रुग द्वै ही सों न नेकहू अघेये इन—
ऐसे झुकाझुक में झपाक झकियाँ दई ;
कीजै कहा राम! स्याम आनन बिलोकिबे को,
बिरचि बिरंचि ना अनंत अँखिया दई ।

पाती लिखी सुमुखि सुजान पिय गोविंद को,
स्रीजुत सलोने स्याम सुखनि सने रहौ;
कहै 'पदमाकर' तिहारी छेम छिन-छिन,
चाहियतु प्यारे मन मुदित घने रहौ।
विनती इती है कै हमैस हूँ हमैं तौ निज,
पायन की पूरी परिचारिका गने रहौ;
याही में मगन मनमोहन हमारो मन,
लगनि लगाय लाल मगन बने रहौ।

## होली

या अनुराग की फाग लखौ जहँ रागती राग किसोर किसोरी;
त्यों 'पदमाकर' घाली घली फिरि लाल ही लाल गुलाल की झोरी।
जैसी की तैसी रही पिचकी कर काहू न केसर रंग में बोरी;
गोरिन के रँग भींजिगो साँवरो साँवरे के रँग भींजी सु गोरी।

फाग के भीर अभीरन पै गहि गोविंदै लै गई भीतर गोरी;
भाई करी मन की 'पदमाकर' ऊपर नाय अबीर की झोरी।
छीनि पितम्मर कम्मर तै सु बिदा दई मींड़ि कपोलन रोरी;
नैन नचाय कही मुसकाय लला फिरि अइहो खेलन होरी।

चंदकला चुनि चूनरि चारु दई पहिराय सुनाय सुहोरी;
बेंदी बिसाखा रची 'पदमाकर' अंजन आँजि समाज कै रोरी।
लागी जबै ललिता पहिरावन स्याम को कंचुकि केसर बोरी;
हेरि हरी मुसक्याइ रही अँचरा मुख दै वृपभानु-किसोरी।

एकै संग धाए नंदलाल औ' गुलाल दोऊ,
दृगनि गए जु भरि आनंद मढ़ै नहीं ;
धोय-धोय हारी 'पदमाकर' तिहारी सौंह,
अब तौ उपाय एकौ चित्त में चढ़ै नहीं।
कैसी करौं, कहाँ जाऊँ, कासों कहौं, कौन सुनै,
कोऊ तौ निकासो जासों दरद बढ़ै नहीं ;
एरी मेरी बीर ! जैसे तैसे इन आँखिन तैं,
कढ़िगो अबीर पै अहीर को कढ़ै नहीं।

आई खेलि होरी घरै नवल किसोरी कहूँ,
बोरी गई रंगन सुगंधन झकोरै है ;
कहै 'पदमाकर' इकंत चल चौकी चढ़ि,
हारन के बारन तें फंद बंद छोरै है।
घाँघरे की घूमनि सु ऊरून दुबीचैं दाबि,
आँगी हूँ उतारि सुकुमारि मुख मोरै है ;
दंतन अधर दाबि दूनर भई सी चापि,
चौवर पचौवर कै चूनरी निचोरै है।

## अनुरोध

जब लौं घर को धनी आवै घरै तब लौं तो कहूँ चित दैबो करौ ;
'पदमाकर' ये बछरा अपने बछरान के संग चरैबो करौ।
अरु औरन के घर तैं हम सौं तुम दूनी दुहावनि लैबो करौ ;
नित साँझ सबेरे हमारी इहा हरि गैया भला दुहि जैबो करौ।

## रति-क्लांता

चह चही चुभके चुभी हैं चौंक चुंबन की,
लहलही लांबी लटैं लपटी सुलंक पर ;
कहै 'पदमाकर, मजानि मरगजी मंजु—
मसकी सु आँगी है उरोज के अंक पर।
सोई रससार पोस गंधनि समोई स्वेद,
सीतल सुलोने लोने बदन मयंक पर ;
किन्नरी नरी है, कै छरी है छविदार परी,
टूटी सी परी है कै परी है पर्यंक पर।

कै रति रंग थकी थिर ह्वै, पलका पर प्यारी परी अलसाय कै ;
त्यों 'पदमाकर' स्वेद के विंदु, लसैं मुकुताहल से तन छाय कै।
बिंदु रचै मेंहदी के लसै कर, तापर रह्यो आनन आय कै ;
इंदु मनो अरविंद पै राजत, इंद्र वधून के वृंद विछाय कै।

## वार-वधू

आरस सों आरत सम्हारत न सीस-पट,
गजब गुजारत गरीबन की धार पर ;
कहै 'पदमाकर' सुगंध सरसावै सुचि,
विथुरि बिराजै बार हीरन के हार पर।
छाजत छबीली छिति छहरि छरा की छोर,
भोर उठि आई केलि मंदिर के दुवार पर ;
एक पग भीतर, सु एक देहरी पै धरें,
एक कर कंज, एक कर है किवार पर।

अधखुली कंचुकी उरोज अध आधे खुले,
अधखुले वेष नख रेखन के झलकें ;
कहै 'पदमाकर' नवीन अधनीवी खुली,
अधखुले छहरि छराके छोर छलकें ।

भोर जग प्यारी अध ऊरध इते की ओर,
भापी झिखि झिरकि उघारि अधपलकें ;
आँखें अधखुली अधखुली खिरकी है खुली,
अधखुले आनन पै अधखुली अलकें ।

## विरह

दूर ही ते देखत विथा मैं वा वियोगिन की,
आई भले भाजि ह्याँ इलाज मढ़ि आवेगी
कहै 'पदमाकर' सुनो हो घनस्याम जाहि,
चेतत कहूँ जो एक आह कढ़ि आवेगी ।

सर सरितान को न सूखत लगैगी देर,
एती कछु जुलमिनि ज्वाला बढ़ि आवेगी ;
ताके तन-ताप की कहौ मैं बात कहा मेरे—
गात ही छुए तैं तुम्हैं ताप चढ़ि आवेगी ।

आई तजि हौं तो ताहि तरनि तनूजा तीर,
ताकि-ताकि तारापति तरफति ताती सी ;
कहै 'पदमाकर' घरीक ही में घनस्याम,
काम तौ कतलबाज कुंजन है काती सी ।

याही छिन वाही सो न मोहन मिलौगे जो पै,
लगन लगाई एती आगिनि अवाती सी ;
रावरी दुहाई तौ बुझाई न बुझैगी फेरि,
नेह भरी नागरी की देह दिया वाती सी ।

एहो नंदलाल ! ऐसी ब्याकुल परी है वाल,
हाल ही चलौ तो चलौ जोरी जुरि जायगी ;
कहै 'पदमाकर' नहीं तो ये भकोरे लगे,
ओरे लौं अचानक विन घोरे घुरि जायगी ।
सीरे उपचारन घनेरे घन सारन को,
देखत ही देखो दामिनी लौं दुरि जायगी ;
तौ ही लग चैन जौलौं चेती है न चंदमुखी,
चेतैगी कहूँ तौ चाँदनी में चुरि जायगी ।

पूर अँसुवान को रह्यो जो पूरि आँखिन में,
चाहत वह्यो पै वढ़ि बाहरै वहै नहीं ;
कहै 'पदमाकर' सु धोखे हू तमाल तरु,
चाहत गह्योई पै है गहव गहै नहीं ।
काँपि कदली लौं या आली को अवलंब कहूँ,
चाहत लह्यो पै लोक लाजन लहै नहीं ;
कंत न मिले को दुख दारुन अनंत पाय,
चाहत कह्यो पै कछु काहू सो कहै नहीं ।

प्रानन के प्यारे तन-ताप के हरन हारे,
नंद के दुलारे ब्रजवारे उमहत हैं;
कहै 'पदमाकर' उरूझे उर-अंतर यों,
अंतर चहे हूँ ते न अंतर चहत हैं।
नैनन बसे हैं अंग-अंग हुलसे हैं,
रोम रोमनि रसे हैं निकसे हैं को कहत है;
ऊधौ वे गोविंद कोऊ और मथुरा मैं
यहाँ मेरे तौ गोविंद मोहि-मोहि मैं रहत हैं।

ए ब्रजनंद चलो किन वा ब्रजलूकैं बसंत की ऊकन लागीं;
त्यौं 'पदमाकर' पेखे पलासन पावक सी मनो फूकन लागीं।
वे ब्रजवारी विचारी बधू वनि बावरि लौं हिय हूकन लागीं;
कारी कुरूप कसाइनै ऐसीं कुहू-कुहू क्वैलिया कूकन लागीं।

बैन सुन्यो जब तैं मधुर, तब तैं सुनत न बैन;
नैन लगे जब तैं लख्यो, तब तैं लगत न नैन।
ज्यों-ज्यों बरसत घोर घन, घन घमंड गरुवाइ;
त्यों-त्यों परति प्रचंड अति, नई लगन की लाइ।
बरसत मेह अछेह अति, अवनि रही जल पूरि;
पथिक तऊ तुव गेह तैं, उठत भभूकन धूरि।

## चंद्र

सिंधु के सपूत सुत सिंधु तनया के बंधु,
मंदिर अमंद सुभ सुंदर सुधाई के
कहै 'पदमाकर' गिरीस के बसे हौ सीस,
तारन के ईस कुल कारन कन्हाई के।

हाल ही के बिरह-बिचारी-ब्रजबाल ही पै,
ज्वाल से जगावत जुन्हाल की जुन्हाई के ;
एरे मतिमंद चंद आवत न तोहि लाज,
ह्वै के द्विजराज काज करत कसाई के ।

## आँसू

आँखिन ते आँसू उमढ़ि, परत कुचन पर आन ;
जनु गिरीस के सीस पर ढारत मरत मुकतान ।

## स्रम-सीकर

यों स्रम-सीकर सुमुख तें परत कुचन पर बेस ;
उदित चंद्र मुकुता छतनि पूजत मनहुँ महेस ।

## पुलक

पुलकित गात अन्हात यों अरी खरी छवि देत ;
उठे आँकुरे प्रेम के, मनहुँ हेम के खेत ।

## गनगौर

द्योस गनगौर के सुगिरजा गोसाइन की,
छाई उदयपुर में बधाई ठौर-ठौर है ;
देखो भीम राना यों तमासा ताकिबे के लिए,
माची आसमानन में बिमानन की भौर है ।

कहै 'पदमाकर' त्यों धोखे में उमा के आज—
गौनिन की गोद में गजानन की दौर है ;
पारावार हेला महामेला में महेस पूछैं,
गौरन में कौनसी हमारी गनगौर है ?

## तलवार

दाहन तैं दूनी तेज तिगुनी त्रिसूलहू तैं,
चिल्लिन तैं चौगुनी चलाक चक्र चाली तैं ;
कहै 'पदमाकर' महीप रघुनाथ राव
ऐसी समसेर सेर सत्रुन पै घाली तैं।
पाँच गुनी पव्व तैं पचीस गुनी पावक तैं,
प्रकट पचास गुनी प्रलय प्रनाली तैं ;
साठ गुनी सेस तैं सहस्र गुनी स्रापन तैं,
लाख गुनी लूक तैं करोर गुनी काली तैं।

## शिव की उदारता

देव, नर, किन्नर अनेक गुन गावत,
पै पावत न पार जा अनंत गुन पूरे को ;
कहैं 'पदमाकर' सुगाल के बजावत ही,
काज करि देत जन जाचक जरूरे को।
चंद्र की छटान जुत, पन्नग फटान जुत,
मुकुट विराजै जटा जूटन के जूरे को ;
देखो त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ,
पैये फल चार फूल एक दे धतूरे को।

## राम के प्रति

द्योस की राति करै जो चहै अरु राति हूँ को करि द्योस दिखावै ;
त्यों 'पदमाकर' सील को सिंधु पिपीलिका के बल फील फिरावै।
यों समरत्थ तनै दसरत्थ को सोई करै जो कछू मन भावै ;
चाहे सुमेरु को राई करै रचि राई को चाहै सुमेरु बनावै।

आनंद के कंद जग ज्यावत जगत वृंद,
दसरथ-नंद के निबाहे ही निबहिए ;
कहै 'पदमाकर' पवित्र पन पालिबे को,
चौरे चक्रपानि के चरित्रन को चहिए।
अवध-बिहारी के बिनोदन में बीथि-बीथि,
गीधा, गुह, गीधे के गुनानुवाद गहिए ;
रैन दिन आठो जाम राम, राम, राम, राम,
सीताराम, सीताराम, सीताराम कहिए।

जोग जप संध्या साधु-साधन सबैई तजे,
कीन्हें अपराध ते अगाध मनभावते ;
ते ते तजि औगुन अनंत 'पदमाकर' तौ,
कौन गुन लैकै महाराज ही रिझावते।
जैसे अब तैसे पै तिहारे बड़े काम के हैं,
नाहीं तौ न एते बैन कबहू सुनावते ;
पावते न मोसों जो पै अधम कहूँ तौ राम,
कैसे तुम अधम-उधारन कहावते।

अगुन अनंत खरदूपन लौं दीखवंत,
तुच्छ त्रिसिरा लौं जाकी एक हू न जस है :
कहै 'पद्माकर, कवंध लौं मदांध महा,
पापी हौं मरीच लौं न दाया को दरस है।
मंथरा लौं मंथर कुपंथी पंथ पाहन लौं,
बालि हूँ लौं विपयी न जान्यौ और रस है ;
व्याध हूँ लौं बधिक विराध लौं विरोधी राम,
एते पै न तारो तौ हमारो कहा वस है ?

व्याध हू तैं बिहद असाधु हौं अजामिल
तैं ग्राह तैं गुनाही कहौ तिन मैं गिनाओगे ;
स्योरी हौं न सूद्र हौं न केवट कहूँ को त्यों
न गौतमी तिया हौं जापै पग धरि आओगे।
राम सौं कहत 'पद्माकर' पुकारि तुम,
मेरे महापापन को पारहू न पाओगे ;
सीता सी सती को तज्यौ झुठो ही कलंक सुनि,
साँचो हूँ कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे ?

प्रलै के पयोनिधि लौं लहरैं उठन लागीं,
लहरा लग्यो त्यों होन पवन पुरवैया को ;
भीर भरी झाँझरी बिलोकि मझधार परी,
धीर न धरात 'पद्माकर' खेवैया को।

कहा वार कहा पार जानो है न जात कछू,
दूसरो दिखावत न खैया और नैया को ;
वहन न पैहै घेरि घाटहिं लगैहैं ऐसो,
अमित भरोसो मोहिं मेरे रघुरैया को।

नृपति राम के राज मैं, है न सूल दुख-मूल ;
लखियत चित्रन मैं लिख्यो, संकर के कर सूल।

## श्रीकृष्ण के प्रति

देखु 'पदमाकर' गोविंद की अमित छवि,
संकर समेत विधि आनँद सों बाढ़ो है ;
झिझकत झूमत मुदित मुसकात गहि,
अंचल को छोर दोउ हाथन सो आढ़ो है।
पटकत पाँव होत पैजनी झुनुक रंच,
नेक-नेक नैनन तें नीर कन काढ़ो है ;
आगे नंदरानी के तनिय पय पीवे काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठुनुकत ठाढ़ो है।

ए व्रजचंद, गोविंद, गोपाल, सुनौ किन केते कलाम किए मैं ;
त्यों 'पदमाकर' आनंद के नद हौ नँद-नंदन जानि लिए मैं।
माखन चोरि कै खोरिन ह्वै चले भाजि कछू भय मानि जिए मैं ;
दूरिहु दौरि दुरयो जो चहौ तो दुरौ किन मेरे अँधेरे हिए मैं।

## गंगा-महिमा

कूरम पै कोल, कोलहू पै सेस कुंडली है,
कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की ;
कहै 'पदमाकर' त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति रजत-पहार की।
रजत-पहार पर संभु सुर-नायक हैं,
संभु पर ज्योति जटाजूट हू अपार की ;
संभु-जटा-जूट पर चंद की छुटी है छटा,
चंद की छटान पै छटा है गंगधार की।

कलित कपूर में न कीरति कुमोदनी में,
कुंद में न कास में कपास में न कंद में ;
कहै 'पदमाकर' न हंस में न हास हू में,
हिय में न हेरि हारी हरिन के वृंद में।
जेती छवि गंग की तरंगन में ताकियत,
तेती छबि छोर में न छीरधि के छंद में ;
चैत में न चैत-चाँदनी हू में चमेलिन में,
चंदन में है न चंदचूड़ में न चंद में।

बिधि के कमंडल की सिद्धि है प्रसिद्ध यही,
हरि पद पंकज प्रताप की लहर है ;
कहै 'पदमाकर' गिरीस सीस मंडल के,
मुंडन की माल तत्काल अघहर है।

भूपति भगीरथ के रथ की सु पुन्य-पथ,
जन्हु-जप-जोग फल फैल की फहर है ;
छेम की छहर गंगा रावरी लहर,
कलिकाल को कहर जमजाल को जहर है ।

जैसो तू न मोको कहूँ नेकहू डरात हुतो,
तैसो अब हौं हूँ तोहि नेकहू न डरिहौं ;
कहै 'पदमाकर' प्रचंड जो परैगो, तौ
उमंड करि तोसो भुजदंड ठोकि लरिहौं ।
चलाचलु चलाचलु विचल न वीच ही तैं,
कीच वीच नीच तौ कुटुंबहि कचरि हौं ;
एरे दगादार मेरे पातक अपार,
तोहि गंग की कछार में पछार छार करिहौं ।

हौं तो पंचभूत तजिवे को तक्यो तोहि पर,
तू तो कस्यो मोहि भलो भूतन को पति है ;
कहै 'पदमाकर' सु एक तन तारिबे मैं,
कीन्हों तन ग्यारह कहौ सो कौन गति है ?
मेरे भाग्य गंगा यही लिखी भगीरथी तुम्हैं,
कहिए कछूक तौ कितेक तेरी मति है ;
एक भव-सूल आयो मेटिवे को तेरे कूल,
तोहि तो त्रिसूल देत बार न लगति है ।

सूधरो जो होतो माँगि लेतो और दूजो कहूँ,
जातो बन खेती करि खातो एक हर की ;
या तो 'पदमाकर' न मानत है नाथ चलै,
भुजन के साथ है गिरैया अजगर की।
मैं तो याहि छोड़ौं पै न मोको यह छोड़त है,
फेरि लैरि फेरि व्याधि आपने बगर की ;
सैल पै चढ़त गहि ऊरध की गैल गंग,
कैसो बैल दीन्हे जो न गैल गहै घर की।

गंगा जू तिहारे तीर आछी भाँति 'पदमाकर'
देखी एक पातकी की अद्भुत मुकति है ;
आय कै गोबिंद वाहि धरिकै गरुड़ जी पै,
आपनेई लोक जाइबे की कीनी मति है।
जौलौं चलिबे में भयो गाफिल गोविंद,
तौलौं चोरि चतुरानन चलाई हंस गति है ;
जौलौं चतुरानन चितैवै चहुँ ओर लग्यो,
तौलौं वृष लादिकै पधार्‍यो वृषपति है।

सुचित गोविंद ह्वै के सोवतो कहाँ धौं जाय,
जल जंतु पाँति जरि जैवे को अखिलती ;
कहै 'पदमाकर' सुजादा कहौं कौन अब,
जाती मरजादा है मही की अनमिलती।

जल, थल, अंतरिच्छ पावत क्यों पापी मुक्ति,
मुनिजन जापकन जौ न दुरमिलती ;
सूखि जातो सिंधु बड़वानल को झारन सों,
जो न गंगधार ह्वै हजार धार मिलती।

## पश्चाताप

बैस बिसासिनि जाति बही उमही छिनही छिन गंग की धार सी ;
त्यो 'पदमाकर' पेखनियाँ अजहूँ न भजे दशरत्थ कुमार सों।
बार पके थके अंग सबै मढ़ि मीच गरेहैं परी हर-हार सी ;
देखो दसा किन आपनी तू अब हाथ के कंगन को कहा आरसी ?

ह्वै थिर मंदिर में न रह्यो गिरि कंदर में न तप्यो तप जाई ;
राज रिझाए न कै कविता रघुराज-कथा न यथा मति गाई।
यों पछितात कछू 'पदमाकर' कासों कहों निज मूरखताई ;
स्वारथ हूँ न कियो परमारथ योंही अकारथ बैस बिताई।

भोग में रोग वियोग सँयोग में योग में काय कलेस कमायो ;
त्यों 'पदमाकर' वेद पुरान पढ्यो पढ़ि कै बहु बाद बढ़ायो।
दौस्यो दुरास में दास भयो पै कहूँ बिसराम को धाम न पायो ;
कायो गमायो सु ऐसे ही जीवन हाय पै राम को नाम न गायो।

मानुप को तन पाय अन्हाय अघाय पियो किन गंग को पानी ?
आपत क्यों न भयो 'पदमाकर' राम ही राम रसायन बानी ?
सारँग पानी के पायन सों तजि कै मन को कस होत गुमानी ?
मोटी मुचंड महा मतवारिन मूड़ पै मीच फिरै मड़रानी।

को किहि को सुत, को किहि को पितु,
को किहि को पति, कौन को तो ?
कौन को को जग ठाकुर - चाकर,
को 'पदमाकर' कौन को गोती ?
जानकी - जीवन जानि यहै,
तजि देतो सबै धन धाम औ' धोती ;
हौं तो न लोटतो लोभ लपेट में,
पेट की जो पै चपेट न होती।

श्वास बस डोलत सु याको बिसवास कहा,
साँस बस बोले मल-माँस ही को गोला है ;
कहै 'पदमाकर' छन भंगुर सरीर यह,
पानी कैसो फेन जैसो फलक फफोला है।
करम कसेरा पंच तत्वन बसेरा कर,
ठौर-ठौर जोला फेर ठौर-ठौर पोला है ;
छोड़ हरि नाम नहीं पैहैं बिलराम अरे,
निपट निकाम तन चामही को चोला है।

## जीवन विवेक

आयो मन हाथ तब आयबो रह्यो न कछु,
भायो गुरु-ज्ञान फेर भायवो कहा रह्यो ;
कहै 'पदमाकर' सुगंध की तरंग जैसे,
पायो सतज्ञान फेर पायबो कहा रह्यो ;

दान बलवान बल विविध वितान वल,
छायो जस पुंज फेर छायबो कहा रह्यो ?
ध्यायो राम-रूप तब ध्यायबो रह्यो न कछु
गायो राम नाम फेर गायबो कहा रह्यो ?

## नीति वाक्य

निरखि रूप नँदलाल को दृगन रुचै नहि आन ;
तजि पियूप कोऊ करत कटु औपध को पान ।
सतसँग तैं वैराग है, ताते मन संतोप ;
संतोपहि तैं ज्ञान है, होत ज्ञान तैं मोप ।
अन्न मूल घन घनन कौ मूल जग्य अभिराम ;
ताको धन धन कौ धरम, धरम मूल हरिनाम ।
दुख दरिद्र की संक सौं, लोभी सुधन न देत ;
दातहु ताही संक सौं, सरवस देत सहेत ।
जे छोड़त कुल आपनो, ते पावत बहु खेद ;
लखहु वंस तजि बाँसुरी, लहै लौह सौं छेद ।
बहु आयुध के घात तैं दुसह बज्र को पात ;
ताके पातहुँ तै दुसह खल-मुख निकसी बात ।
धन्य गनीजतु खगन मैं चातक धरै सुधीर ;
सक्र सिवाय न और सौं जाँचत कबहूँ नीर ।
भूख बिबस कृस तन पस्यो जदपि थकित आवाज ;
तदपि मत्त गजराज बिन हनत न तृन मृगराज ।
सूँड़ बाँधि किय स्याम तन ताही की अनुहार ;
क्यों रासभ लै चलहि गौ गुरु गयंद कौ भार ।

* समाप्त *

# मुख्य सहायक ग्रंथों की तालिका

१. हिम्मत वहादुर विरुदावली ( ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित )
२. जगद्विनोद ( भारतजीवन-कार्यालय, काशी द्वारा प्रकाशित )
३. प्रबोध-पचासा ( „ „ )
४. गंगा-लहरी ( नवलकिशोर प्रेस द्वारा प्रकाशित )
५. राम-रसायन ( भारतजीवन-कार्यालय द्वारा प्रकाशित )
६. पद्माभरण ( „ „ )
७. मिश्रबंधु-विनोद ( गंगा-पुस्तक-माला, लखनऊ )
८. कविता-कौमुदी ( हिंदी-मंदिर, प्रयाग )
९. देवनागर वर्ष १ अंक १
१०. साहित्य-समालोचक ( त्रैमासिक पत्रिका )
११. माधुरी ( मासिक पत्रिका )
१२. विशाल-भारत ( मासिक पत्रिका )
१३. 1001 Gems of English Litrature ( Poetry )
१४. सुंदरी-तिलक ( भारतेंदु हरिश्चंद्र संगृहीत )
१५. मतिराम-ग्रंथावली ( कृष्णविहारी मिश्र संपादित )
१६. हिंदी-साहित्य का इतिहास ( रामचंद्र शुक्ल )
१७. विहारी-सतसई ( पद्मसिंह शर्मा )
१८. काव्य-प्रभाकर ( जगन्नाथप्रसाद 'भानु' )

# साहित्य के पाँच रत्न

## केशव की काव्य-कला

महाकवि केशव की गणना अपनी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवियों में है। एक कवि होने के अतिरिक्त वे आचार्य्य भी थे। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ रामचंद्रिका भावुक रामभक्तों तथा साहित्य-मर्मज्ञों का कंठहार ही है। रतनबावनी में वीर रस का जैसा परिपाक हुआ है वैसा अपनी भाषा के कम ग्रंथों में हुआ है। ऐसी अवस्था में इस ग्रंथ का बहुत महत्व है। लाला भगवानदीन जी की पांडित्यपूर्ण सरल टीकाओं के कारण केशव के ग्रंथों के अध्ययन में अमूल्य सहायता मिल रही है परंतु उनके ग्रंथों पर कोई आलोचना न होने से विद्यार्थियों को बहुत असुविधा होती थी। केशव की कला, भावुकता, आचार्यत्व इत्यादि के विषय में परीक्षाओं में प्रश्न तो कर दिये जाते थे परंतु विद्यार्थियों के पास अध्ययन करने को कोई पुस्तक न थी। केशव की काव्य-कला इन्हीं कठिनाइयों को दृष्टि में रखकर लिखी गई है। इसके विषयों का परिचय इसके निम्नलिखित अध्यायों से हो सकता है (१) कवि-परिचय, (२) ग्रंथ-परिचय (३) भावव्यंजना (४) बाह्य दृश्य-चित्रण (५) अलंकार (६) प्रबंध-कल्पना तथा चरित्र-चित्रण (७) संवाद (८) रामचंद्रिका तथा संस्कृत ग्रंथ (९) कविप्रिया तथा संस्कृत आचार्य। लेखक ने बड़े मनोयोगपूर्वक केशव का अध्ययन कर इसको प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक के संबंध में सरस्वती लिखती है कि इसमें संदेह नहीं कि इस पुस्तक के लिखने में लेखक महोदय ने जहाँ अपनी अध्ययनशीलता का परिचय दिया है वहाँ अपने साहस का भी। भाषा-काव्य के प्रेमियों को चाहिए कि वे केशव की काव्य-कला को पढ़ें। ऐसी उपयोगी सुंदर छपी २२५ पेज की सजिल्द पुस्तक का मूल्य १॥।) मात्र।

# बिहारी-सतसई-सटीक

(टीका० लाला भगवानदीन)

हिंदी-संसार में शृंगार-रस की इसके जोड़ की कोई भी दूसरी पुस्तक नहीं है। यह अनुपम और अद्वितीय ग्रंथ है; पर है जरा कठिन। इसी कठिनाई को दूर करने के लिए स्वर्गीय लाला भगवान-दीनजी, प्रो० हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी, ने अर्वाचीन ढंग की नवीन टीका लिखी। टीका कैसी होगी, इसका अनुमान पाठक टीकाकार के नाम से ही कर लें, इसमें विहारी के प्रत्येक दोहे के नीचे उसके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, वचननिरूपण, अलंकार आदि सभी ज्ञातव्य बातों का समावेश किया गया है। 'सरस्वती' 'सौरभ' 'शारदा' 'विद्यार्थी' आदि पत्रिकाओं तथा बड़े-बड़े विद्वानों ने इस पुस्तक की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। संशोधित सचित्र संस्करण मूल्य १।।।) मात्र।

# रहीम-रत्नावली

मुसलमान होकर भी 'रहीम' ने जितनी सुंदर तथा नीतिपूर्ण हिंदी कविता की है उसे देखकर दंग रह जाना पड़ता है। इनकी रचना कितने ही स्थानों से प्रकाशित हो चुकी है; पर, हमें अभी हाल ही में उनके कई नये ग्रंथ मिले हैं। वे सब इसमें सम्मिलित कर दिये गये हैं। अब इतना बड़ा और इतना अच्छा संस्करण कहीं का भी नहीं है। इसमें ३०० के लगभग दोहे, नगर-शोभावर्णन, नायिकाभेद, नवीन प्राप्त सवा सौ बरवे, मदनाष्टक, शृंगारसोरठ, रहीम-काव्य, पाठान्तर, (Parallel Quotations) तथा दो चित्र दिये गये हैं। इन सबके अतिरिक्त प्रारंभ में गवेषणापूर्ण बृहद्‌काय भूमिका भी इसमें जोड़ दी गयी है, जिसमें रहीम के काव्य की आलोचना के साथ-ही-साथ उनके संबंध की किंवदंतियाँ, जीवनी आदि दी गयी हैं।

इसके कारण पुस्तक का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। पुस्तकांत में टिप्पणियाँ भी भरपूर दे दी गयी हैं। सुपरिचित साहित्य-सेवी पं० मायाशंकर जी याज्ञिक ने इस संस्करण का संपादन किया है। पृष्ठ-संख्या २५० के ऊपर, मूल्य १)

गो० तुलसीदास जी कृत

## विनय-पत्रिका

( टीकाकार श्रीवियोगीहरि )

सर्वमान्य 'रामायण' के प्रणेता महात्मा तुलसीदास जी का नाम भला कौन नहीं जानता? गोस्वामी जी की सर्वश्रेष्ठ रचना यही विनय-पत्रिका है। विनय-पत्रिका का सा भक्तिज्ञान का दूसरा कोई ग्रंथ नहीं है। इसमें शिव, हनुमान, भरत, लक्ष्मण आदि पार्षदों सहित जगदीश श्री रामचंद्र की स्तुति के बहाने वेदांत के गूढ़ तत्त्वों का समावेश किया गया है। वेद, पुराण, उपनिषद, गीतादि में वर्णित ज्ञान की सभी बातें इसमें गागर में सागर की भाँति भर दी गई हैं। इसकी टीका उच्चकोटि के विद्वान एवं लब्धप्रतिष्ठ वियोगीहरि जी ने की है। इस टीका में शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ प्रसंग, पदच्छेद आदि सब ही कुछ दिए गए हैं। भावार्थ के नीचे टिप्पणी में अंतर-कथाएँ, अलंकार शंकासमाधान आदि के साथ-ही-साथ समानार्थी हिंदी तथा संस्कृत कवियों के अवतरण भी दिए गए हैं। अर्थ तथा प्रसंग पुष्टि के लिए गीता, वाल्मीकि रामायण तथा भागवत आदि पुराणों के श्लोक भी उद्धृत किए गए हैं। दार्शनिक भाव तो खूब ही समझाए गए हैं। इन सब बातों के कारण टीका अद्वितीय हुई है। नवीन संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण। पृष्ठ-संख्या लगभग ७००। मूल्य २॥), सजिल्द २।॥), बढ़िया कपड़े की जिल्द ३)।

# आँख और कविगण

( संपादक—पं० जवाहर लाल चतुर्वेदी )

हिंदी साहित्य में यह आँख पर की गई कविताओं का पहला संग्रह है। कवियों की कल्पनातीत-कविता का रसास्वादन कर आप तृप्त हो जायँगे। हम अपने मुख से कुछ अधिक न कह कर इस अभूतपूर्व पुस्तक के संबंध में केवल दो प्रतिष्ठित सम्मतियाँ देना ही उपयुक्त समझते हैं।

"हिंदी में यह पुस्तक अपने ढंग की अनोखी है। हिंदी, संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी के प्राचीन तथा आधुनिक अनेक सुप्रसिद्ध कवियों की नेत्र-संबंधिनी कविताओं का यह बृहत् संग्रह है। संकलक महोदय ने उक्त चारो भाषाओं के साहित्य-सागर का पूरा मंथन कर वे सूक्ति-रत्न निकाले हैं, जो हिंदी-संसार को अपनी अलौकिक दमक से चका-चौंध कर देने के लिये पर्याप्त हैं।

आँखों से संबंध रखनेवाली ऐसी अगणित सूक्तियों का यह संकलन है, जिन्हें पढ़ने से सहृदयों और भावुकों के हृदयोदधि में तूफ़ान आए विना नहीं रह सकता। इस पुस्तक से मनोरंजन तथा ज्ञानार्जन दोनों होता है। काव्य-रस-लोलुपों के लिये यह बड़े काम की चीज़ है।"

—*गयाप्रसाद शुक्ल एम० ए० ( डी० ए० वी० कालेज मेगज़ीन देहरादून )*

आँख पर संसार के सभी कवियों ने सभी भाषाओं में विचित्र-विचित्र उक्तियाँ कही हैं। संस्कृत और हिंदी का तो कहना ही क्या है। इन भाषाओं के कवियों ने तो जो विषय लिया उसपर जहाँ तक मानव-कल्पना की पहुँच हो सकती थी पहुँच गए! ऐसी ऐसी उक्तियाँ संपादक महोदय को जहाँ मिलीं, आपने संग्रह की हैं। रसिक सज्जनों को यह पुस्तक अपने पास अवश्य रखनी चाहिए। मूल्य ३) मात्र।

कृष्णदेवप्रसाद गौड़ ( आज, काशी )